RNI:UPHIN/2016/46009
RNP/SHN/18/2022-24

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
ब्रह्मज्ञान ही अमृत है।
सरसावा

तारतम मंजरी

वर्ष ८ अंक २ फरवरी २०२३ बुद्धजी शाका ३४४ विक्रम सवंत् २०७९ पृष्ठ संख्या ३२

।। परमधाम।।

।। चितवनी।।

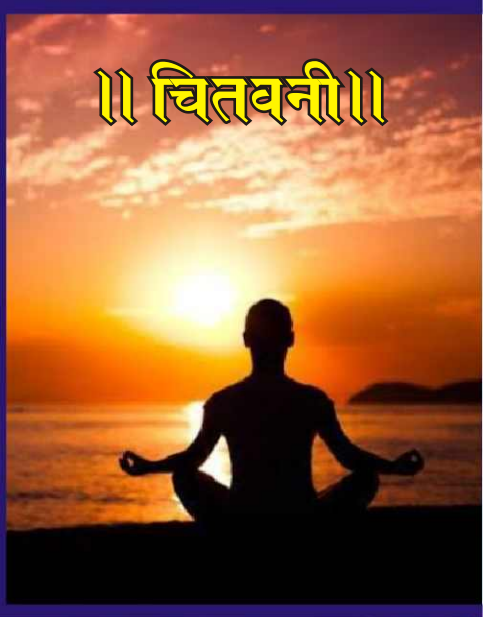

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
नकुड़ रोड़, सरसावा, जिला सहारनपुर–247232 (उ.प्र.)

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ की स्थापना वर्ष 2005 में सरसावा, जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) में श्री राजन स्वामी जी द्वारा की गई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य ज्ञान, शिक्षा, उच्च आदर्श, पावन चरित्र व भारतीय संस्कृति का समाज में प्रचार करना तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित आध्यात्मिक मूल्यों द्वारा मानव को महामानव बनाना है। इसके साथ ही यह संस्था श्री प्राणनाथ जी की अलौकिक वाणी का प्रकाश फैलाकर सम्पूर्ण विश्व को एक सच्चिदानंद परब्रह्म के प्रेममयी आंगन में भाव-विभोर करने के लिए कृत संकल्पित है। इसके लिए उच्च माध्यमिक शिक्षा प्रदान कर ऐसे विद्वानों को तैयार किया जा रहा है जो संसार को धर्म के वास्तविक स्वरूप का बोध करा सकें और सच्चिदानंद परब्रह्म के साक्षत्कार का यर्थाथ मार्ग दर्शा सकें।

ज्ञानपीठ में उपलब्ध सुविधाओं में मुख्यतः शिक्षा कक्ष, पुस्तकालय व वाचनालय, ध्यान कक्ष, प्रवचन कक्ष, कम्प्यूटर कक्ष, दृश्य-श्रव्य स्टूडियो, छात्रावास, भोजनालय, मुद्रणालय, गौशाला इत्यादि सम्मिलित है।

कालान्तर में ज्ञानपीठ की पन्ना (मध्य प्रदेश), बड़ोदरा (गुजरात), दाहोद (गुजरात) तथा सिक्किम में शाखाएं श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र के नाम से स्थापित की गई हैं जो समाज में ब्रह्मज्ञान का आध्यत्मिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने में निरन्तर कार्य कर रही हैं।

: सम्पर्क करें :

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड़, सरसावा, जिला सहारनपुर-247232 (उ.प्र.)

E-mail : shriprannathgyanpeeth@gmail.com

Website : www.spjin.org • **WhatsApp:** +91 +91 75338 76060

प्रकाशक
राजन स्वामी

•

मुख्य संपादक
आचार्य सुभाष

•

संपादक
कृष्ण कुमार कालड़ा

• • •

लेखों में प्रकट किए गए विचार लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं। इनके प्रति प्रकाशक/संपादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र सहारनपुर होगा।

• • •

सदस्यता शुल्क

भारत : वार्षिक रु. 130/-
आजीवन (10 वर्ष) रु. 1200/-

विदेश : रु. 650/-

तारतम मंजरी

वर्ष 8 • अंक 2 • फरवरी 2023 • बुद्धजी शाका 344
विक्रम संवत् 2079

इस अंक में

1. **सम्पादकीय** 2

2. **छठा सागर इल्म का** 4
— राजन स्वामी

3. **श्री राज जी की मेहर की अनुभूति** 10
— अनिल श्रीवास्तव

4. **वर्तमान समय में बीतक की प्रासंगिकता** 13
— मनीषा दूबे

5. **मूर्ति पूजा कितनी उचित?** 18
— ब्रह्मलीन आशा गिरधर

6. **वर्तमान समय में ब्रह्मवाणी का महत्व** 21
— कांता भगत

7. **मन क्या है?** 25
— पी. के. सिंह

8. **माया गई पोताने घेर** 29
— मधुबेन मगनभाई निजानंदी

प्रकाशन कार्यालय
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
नकुड़ रोड़, सरसावा 247232, जिला सहारनपुर (उ. प्र.)
फोन : +91 70881 20381
ई-मेल : tartammanjari@gmail.com

सम्पादकीय

वाणी से छेड़छाड़ असीम गुनाह है

जैसाकि हम सभी जानते हैं कि श्री कुलजम स्वरूप साहब का अवतरण स्वयं श्री राज जी द्वारा श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर हुआ है। दूसरे शब्दों में, यह श्री राज जी के हृदय में बहता हुआ इल्म का वो सागर है जिसके बिना जीवन के मूल लक्ष्य आत्म-जागृति को पाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

निःसंदेह वाणी हमारे लिए पूज्यनीय है किन्तु हमनें इसे केवल सेवा-पूजा तक ही सीमित किया हुआ है। श्री जी द्वारा अपनी अन्तर्ध्यान लीला के पश्चात इसे श्री गुम्मट जी में सिंघासन पर पधराने का मूल कारण यह था कि इसके कथन को सर्वोपरि मानकर प्राथमिकता दी जाय क्योंकि हमारे लिए यही अंतिम सत्य है जैसाकि सिंगार ग्रंथ में कहा गया है-

हक बैठे इन इलम में तो दिल अर्स हुआ मोमिन (सिनगार २६/२)

बीतक में भी दिल्ली प्रवास के समय जो लक्ष्मीदास जी का प्रसंग आता है उसकी पीछे भी यही भावना है। स्वयं श्री जी ने सुंदरसाथ से स्पष्ट रूप से कहा कि यदि मैं भी वाणी के विपरीत कुछ कहता हूं तो उसे बिल्कुल नहीं मानें। दूसरे शब्दों में, हमें वाणी पर पूर्ण ईमान लाना है क्योंकि इल्म और ईमान आने का पश्चात ही इश्क आता है जिससे श्री राज जी का दीदार होता है जो हमारी आत्म-जागृति का मूल आधार है।

किंतु यह भी देखने में आया है कि वाणी के वचनों, विशेष रूप से कतेब पक्ष के, में फेरबदल कर दिया जाता है जो उचित नहीं है। हम श्री राज जी से बड़े या अधिक समझदार तो नहीं है। उदाहरण के लिए, किरंतन ग्रंथ में निम्न चौपाई है -

इन महंमद के दीन में, जो ल्यावेगा ईमान।
छत्रसाल तिन ऊपर, तन मन धन कुरबान।।

इस चौपाई में 'महंमद' शब्द को 'प्राणनाथ' कर ही सामान्यतः न केवल बोला जाता है बल्कि लिखने और पढ़ने में भी 'प्राणनाथ' ही प्रयोग किया जाता है। अब तो ऐसा लगने लगा है कि मानों वाणी में 'प्राणनाथ' शब्द ही

लिखा है। यहां तक कि हमारे समाज के अनेक मंदिरों में भी यह चौपाई इसी प्रकार अशुद्ध रूप में ही लिखी गई है। क्या अंतर है दोनों में, केवल भाषा का? फिर हममें इतना कांप्लेक्स क्यों है? हमें वाणी से छेड़छाड़ करने की क्या आवश्यकता है? यही नहीं, हमनें श्री कुलजम स्वरूप साहब को तारतम सागर नाम दे दिया है जबकि यह करूणा सखी कृत बीतक का नाम है।

इसी प्रकार, कुछ अति-उत्साही सुंदरसाथ तो कतेब परंपरा के चार ग्रंथों - खिलवत, खुलासा, कयामतनामा और मारफत सागर - को अप्रासंगिक मानकर वाणी से हटाने तक की वकालत करते न केवल सुने गए हैं बल्कि किसी विद्वान ने तो कुछ समय पूर्व इसका प्रारुप भी सोशल मीडिया पर डाल दिया था। इन्हें हटाने का अर्थ है हमने अपने धनी के चार अंग काट दिए हैं क्योंकि वाणी के १४ ग्रंथों को उन्हीं के ही अंगों की उपमा दी गई हैं - 'आरती अंग चतुर्दश केरी'। उल्लेखनीय है कि इन चारों ग्रंथों की छः हजार के लगभग जो चौपाईयां हैं वे इसके प्राण हैं। इन्हीं के कारण ही तारतम वाणी धर्म निरपेक्षता का जीता-जागता उदाहरण है। सारी वाणी पुकार-पुकार कर कहती है-

सोई खुदा सोई ब्रह्म
जो कछु कह्या कतेब ने सोई कह्या वेद

अतः वाणी के साथ किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ अक्षम्य गुनाह की श्रेणी में आता है जिससे हमें सदैव बचना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि हम वाणी का निरंतर स्वाध्याय करें तभी हमें इसकी महिमा का अनुमान हो सकता है।

आध्यात्मिक रहनी

आत्म तत्व से संबंधित संपूर्ण विषय अध्यात्म के अंतर्गत आता है । हमारी आत्मा अपने प्राणवल्लभ, प्राण प्रियतम अक्षरातीत को किस प्रकार रिझाये, यही हमारी अध्यात्मिक रहनी है, जो सर्वोपरि है। सामाजिक एवं धार्मिक रहनी की पूर्णता भी आध्यात्मिक रहने से ही है । इसके बिना सब कुछ अधूरा है।

इस नश्वर जगत में धनी की आनंद की अनुभूति हमेशा होती रहे, इसके लिए निम्न पांच चीजों की आवश्यकता होती है-

- महामति कहे ईमान इस्क की,
- सुक्र गरीबी सबर।
- इन विध रुहे दोस्ती धनी की,
- प्यार कर सके तो कर ।। (किरंतन १०६/१२)

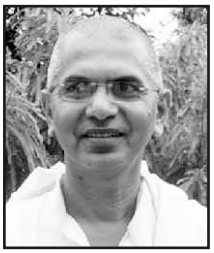

छठा सागर इल्म का

राजन स्वामी
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

सर्वप्रथम, हम संक्षेप में यह जानने का प्रयास करेंगे कि शिक्षा अथवा ज्ञान से हमारा आशय क्या है? जो किसी पदार्थ - चेतन या जड़ - का यथार्थ में बोध कराये। इसी प्रकार, शिक्षा के दो रूप हैं - आध्यात्मिक और भौतिक। सामान्य मनुष्य प्रायः भौतिक शिक्षा को ही वास्तविक समझता है जो शिक्षण संस्थानों में प्रदान किया जाता है। इसमें भी अनेक संकाय होते हैं जैसे चिकित्सा, प्रबंध, अंतरिक्ष, अभियांत्रिकी इत्यादि। दूसरे शब्दों में, इसे पदार्थ विधा भी कहते हैं जिससे एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ का निर्माण किया जा सकता हैं।

जहां तक आध्यात्मिक शिक्षा का प्रश्न है, धर्मग्रंथों के अनुसार परमात्मा के स्वरूप को जानना ही वास्तविक ज्ञान है। तैतरीय उपनिषद में ब्रह्म के लक्षणों के सम्बन्ध में कहा गया है - 'सत्यम ज्ञानम अनंतम ब्रह्म' अर्थात् जो सत्य है, प्रत्यक्ष ज्ञान स्वरूप है और अनंत है, वही ब्रह्म है।

तारतम वाणी के अनुसार, इस सृष्टि में जो भी ज्ञान है उसका स्त्रोत आदिनारायण है। सारी सृष्टि उन्हें ही सर्वज्ञ परमात्मा मानती है। इसके परे बेहद का ज्ञान हैं और उससे भी परे परमधाम का ज्ञान। न तो आदिनारायण को बेहद का ज्ञान हैं और न ही अक्षर को परमधाम का संपूर्ण ज्ञान है। वे पच्चीस पक्षों के बारे में तो अवश्य जानते हैं किन्तु रंगमहल और उसमें होने वाली लीलाओं की जानकारी उन्हें भी नहीं है जैसा कि वाणी में कहा गया है-

अछरातीत के मोहोल में, प्रेम इस्क बरतत।
सो सुध अक्षर को नहीं, जो किन विध केलि करत।।(किरंतन ७४/२९)

लेकिन अक्षरातीत को परमधाम के साथ-साथ बेहद और कालमाया का भी संपूर्ण ज्ञान है। अतः भले ही कोई कितना बड़ा ज्ञानी क्यों न हो, यदि वह अपनी विद्वत्ता का अभिमान करता है तो यह उसकी भूल है। बीतक में हरजी व्यास और चिंतामणि जी का प्रसंग तो हम सबको मालूम ही है। दोनों को अपने ज्ञान का अहंकार था लेकिन जैसे ही उन्हें श्री जी के स्वरूप की पहचान हुई, उनका अहंकार स्वतः ही समाप्त हो गया। इसके विपरीत लालदास जी को देखिए, सम्पूर्ण बीतक की रचना की लेकिन कहीं भी इसका श्रैय नहीं लिया। हर जगह 'कहे महामति' ही लिखा क्योंकि वे

जानते थे कि उनकी केवल कलम चली है जबकि चलाने वाला कोई और है। याद रखिए, सबसे बड़ा ज्ञानी कौन है जिसे अपनी अज्ञानता का बोध हो। वाणी कहती है-

जो कोई मारे इन दुस्मन को, करे सब दुनियां को आसान।
पोहोंचावे सबों चरन धनी के, तो भी लेना ना तिन गुमान।।(किरंतन १०२/११)

अर्थात् भले ही हम सारी दुनिया को तारतम ज्ञान से धनी के चरणों में लाने का सामर्थ्य रखते हों तो भी हमें इसका अभिमान नहीं करना चाहिए।

यहां विधा और अविधा के बारे में भी स्पष्ट करना उचित होगा। विधा जहां मनुष्य को भवसागर से पार करती है वहीं अविधा से वह कर्म करने के लिए विवश होता है और फल की आशा में अपना संपूर्ण जीवन गंवा देता है। क्योंकि अविधा अनित्य को नित्य, अनात्मा को आत्मा, दुख को सुख और अपवित्र को पवित्र मानती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि, जैसाकि हमनें ऊपर कहा, इस क्षर जगत में तो अनेकानेक प्रकार की विधाएं हैं लेकिन श्री राज जी के हृदय में जो ज्ञान इल्म के सागर के रुप में है उसका स्वरुप कैसा है? उल्लेखनीय है कि परमधाम के आठों सागरों में जहां नूर, नीर(रूहों की शोभा-श्रृंगार) और दधि (युगल-स्वरूप की शोभा-श्रृंगार) सागर तो मूर्त रूप में देखे जा सकते हैं, वहीं क्षीर (वहदत), धृत (इश्क), रस (निसबत) और सर्वरस (मेहर) सागरों का लीला रूप में अनुभव किया जा सकता है। किंतु मधु अर्थात् इल्म के सागर को कैसे जाना जा सकता है जिसका न तो कोई मूर्त रुप है न ही लीला रुप।

यह हमारा सौभाग्य है कि श्री राज जी ने तारतम वाणी के रूप में एक ऐसी अनमोल संपदा दी है जिससे उनके दिल में स्थित इल्म के सागर सहित आठों सागरों का ज्ञान प्राप्त हो गया है। दूसरे शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि आठों सागरों में निहित ज्ञान ही परमधाम का ज्ञान हैं। जहां तक इल्म के सागर का प्रश्न है इसमें मुख्यतः तीन बातें हैं- शोभा, धाम और लीला। यधपि परमधाम के अनंत सौंदर्य और अद्वैत लीला को मानवीय बुद्धि से नहीं वर्णित किया जा सकता, क्योंकि जब तक मैं और मेरे का बोध रहेगा, यह कदापि संभव नहीं है। किंतु, जैसाकि वाणी कहती है-

वेदांती भी कहे थके, द्वैत खोजी पर पर।
अद्वैत सब्द जो बोलिए, तो सिर पड़े उतर।।(कलश हिंदुस्तानी २/१४)

अर्थात् जिसने अपना स्वयं का अस्तित्व मिटा दिया हो उसके लिए यह असंभव नहीं है। योगेश्वर श्री कृष्ण ने जो गीता का उपदेश दिया, कबीर ने जो ४१ साखियां लिखी, शंकर भगवान ने जो उमा को निरंकार से परे का ज्ञान दिया एवं सुखदेव मुनि ने भागवत में महारास का वर्णन करने का जो प्रयास किया, वह सब अक्षरातीत के जोश से किया गया, जिसे कतेब की भाषा में जिबरील कहा गया है। और इसी जिबरील को परमधाम में प्रवेश करने तक का अधिकार नहीं है क्योंकि वह स्वलीला अद्वैत है। इसीलिए, वाणी में कहा गया है -

सुपन बुध बैकुंठ लो, या निरंजन निराकार।
सो क्यों सुन्य को उलंघ के, सखी मेरी क्यों कर लेवे पार।।(परिकरमा २/४)

लेकिन यह श्री राज जी की हम ब्रह्मसृष्टियों पर विशेष कृपा ही है कि उन्होंने इसे गागर में सागर के रुप में वाणी में वर्णित कर दिया। बीतक में छठे प्रहर की वृत में कहा है- 'हो हिसाब में न आवहीं, कहों सैयों की खातिर।' अध्यात्म के जिन गहन प्रश्नों - मैं कौन हूँ, मैं कहां से आया हूं तथा मेरी आत्मा का अखंड प्रियतम कौन हैं - का उत्तर वर्षों की समाधि लगाने के पश्चात् भी जिन्हें नहीं मिला, तारतम वाणी से हम चुटकी बजाकर बता सकते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सहित इस सृष्टि के महानतम योगी और महापुरुष एवं चारों वेदों और उपनिषदों को पढ़ने वाले जिस सच्चिदानन्द परमात्मा के स्वरूप और लीला के सम्बन्ध में नहीं बता सके, हमनें तारतम वाणी से सरलता से बता दिया। वाणी कहती है-

किन एक बूंद न पाइया, रसना भी वचन।
ब्रह्मांड धनियों देखिया, जो कहावें त्रैगुन।।(प्रकाश हिंदुस्तानी ११/१०१)

इसी प्रकार, वाणी में ही एक अन्य स्थान पर कहा गया है-

ए निरने करना अर्स का, तिन में भी हक जात।
इत नूर अकल भी क्या करे, जित लदुन्नी गोते खात।।(सिनगार २२/१२४)

अर्थात् अनेक बार तो वाणी अर्थात तारतम ज्ञान भी असमर्थ हो जाता है। अतः इन रहस्यों से पर्दा उठाकर जो सत्य का बोध करा दे, उसे ही इल्म का सागर कहते हैं। किंतु इस संसार में हम उतना ही ग्रहण कर पा रहे हैं जितना श्री महामति जी के हृदय में क्रीड़ा करने वाले सागर की एक बूंद होती है। इसीलिए, वाणी में कहा गया है-

एक बूंद आया हक दिल से, तिन कायम किए थिर चर।
इन बूंद की सिफत देखियो, ऐसे हक दिलमें कई सागर।।(सिनगार ११/४५)

अब प्रश्न यह है कि ज्ञान की ज्योति तभी अखण्ड रह सकती है जब उसे निरंतर प्रज्जवलित रखा जाय। जैसाकि हम सभी जानते है कि हमारे देश में प्राचीन काल में शिक्षा की गुरूकुल परम्परा थी। शिक्षा से हमारा आशय क्या है? शिक्षित होने का अर्थ साक्षर होना नहीं है जबकि वर्तमान समय में शिक्षण संस्थानों में जो कुछ पढ़ाया जाता है वह व्यक्ति को केवल साक्षर बनाता है अर्थात् हमनें पुस्तकें पढ़ कर अक्षरों का ज्ञान प्राप्त लिया। जबकि शिक्षा का वास्तविक अर्थ है- बौद्धिक ज्ञान के साथ संस्कारों का समावेश। यदि उपाधियां प्राप्त कर लेने के पश्चात व्यक्ति में संस्कार नहीं आते तो उसे शिक्षित नहीं कहा जा सकता। एक प्रगतिशील राष्ट्र की शिक्षा नीति कैसी होनी चाहिए - जो मानव को मानव बनाए। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि जब तक आध्यात्मिक शिक्षा नहीं होगी, केवल अर्थकारी शिक्षा से कोई भी समाज सुख-शांति के मार्ग पर नहीं चल सकता। आज यूरोप और अमेरिका में ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज जैसे बड़े-बड़े नामचीन विश्वविद्यालय हैं और इनसे डिग्री प्राप्त युवक सीना तान कर चलता है लेकिन यदि हमें इतिहास के पन्ने पलटें तो पायेंगे कि इंग्लैण्ड में जब सन् १८११ में पहला स्कूल प्रारंभ हुआ था उस समय

भारत में सात लाख से अधिक गुरुकुल थे जिनमें आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार की शिक्षा के साथ-साथ तप, त्याग, वैराग्य, शालीनता इत्यादि सभी कुछ सिखाया जाता था। लेकिन इतनी समृद्ध शिक्षा प्रणाली के होते हुए भी हम हजार वर्षों तक गुलाम बने रहे क्योंकि अंग्रेजों ने सर्वप्रथम हमारी शिक्षा व्यवस्था को ध्वस्त कर अपनी अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को थोपा। रही-सही कसर हमारी अकर्मण्यता ने पूरी कर दी। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम इस परंपरा को सुरक्षित नहीं रख पाए।

यहां प्रश्न यह उठता है कि हमने परमधाम के अलौकिक तारतम ज्ञान को लेकर क्या किया है? याद रखिए, मनुष्य की पहली सबसे पहली और बड़ी आवश्यकता शिक्षा है जिसके बिना उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं है। नीति का कथन है-

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।

अर्थात् जिन लोगों के पास न तो विद्या है, न तप, न दान, न शील, न गुण और न धर्म, वे लोग इस पृथ्वी पर भार हैं और मनुष्य के रूप में मृग/जानवर की तरह से घूमते रहते हैं। याद रखिए, जब किसी देश में शिक्षा का पतन होता है तो सबसे पहले वहां नास्तिकवाद घर करता है। हमारे साथ भी कुछ ऐसा हुआ। जहां :एकं सद्विपा बहुधा वदंति' का उद्घोष होता था वहां लोगों ने न केवल पत्थरों, वृक्षों और नदियों की पूजा करनी प्रारंभ कर दी बल्कि यज्ञों के नाम पर पशुओं की बलि दी जाने लगी। इसी कारण से बौद्ध और जैन जैसे मतों ने धर्म और परमात्मा के अस्तित्व को भी अस्वीकार कर दिया। परिणाम क्या हुआ - एक के बाद एक आक्रांता आते गए और देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ता गया। सभी ने इस देश को लूटा और जो हिंदू सारे विश्व को ज्ञान प्रदान करते थे, स्वयं शिक्षा से दूर होते चले गए। परिणामस्वरूप हिंदू समाज में कर्मकांड का बोलबाला होता चला गया और आज भी जो कुछ होता है धर्म शास्त्रों के विपरीत होता है। और तो और, हमारे समाज में भी क्या हो रहा है? हम परमधाम की ब्रह्मवाणी के एकमात्र अधिष्ठाता होने का दावा करते थकते नहीं किंतु हम उस पर कितना चल रहें हैं यह किसी से छिपा नहीं है। यदि कोई सही मार्ग बताने का प्रयास करता है तो परंपराओं की दुहाई देकर उसका विरोध किया जाता है।

यही संपूर्ण हिंदू समाज के पतन की कहानी है। कोई चाणक्य नहीं था जो आक्रांताओं से हमारी रक्षा करता। चाणक्य का निर्माण किसने किया था-तक्षशिला ने। यह निश्चित है कि यदि आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज जैसे विश्वविद्यालयों की स्थापना नहीं हुई होती तो अंग्रेज कभी भी पूरे विश्व पर शासन नहीं कर सकते थे। यह तो बात हुई क्षर जगत के ज्ञान की महिमा की। हमें तो परमधाम का वो ज्ञान मिला है जिसके समक्ष संसार का कोई ज्ञान नहीं ठहरता। इसकी महिमा का अनुमान वाणी की निम्न चौपाई से लगाया जा सकता है-

हकें इलम ऐसा दिया, जो चौदे तबकों नाहें ।
और नाहीं नूर मकान में, सो दिया मोहे सुपने माहें ।। (खिलवत १०/३३)

लेकिन हमने तो एक छोटा-सा संप्रदाय बना लिया और उस पर प्रवाहियों के सारे नियम लाद दिए। न तो हम सम्प्रदाय की और न ही मन्दिरों की चार-दीवारी से बाहर निकले। हमने कभी यह नहीं सोचा कि श्री प्राणनाथ जी

की वाणी, जो इस चौदह लोकों के ब्रह्माण्ड को भवसागर से पार करने आई है, को जन-जन तक कैसे पहुँचावें। याद रखिए, वैदिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार का श्रैय यदि किसी को जाता है तो वे ऋषियों के आश्रम और गुरूकुल थे। यदि हम आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्ञान को संरक्षित नहीं करते या उन्हें सौंप कर नहीं जाते तो यह उनका भविष्य नष्ट कर सकता है।

संसार को कौन चला रहा है? सत्य पर ही पृथ्वी टिकी है लेकिन सत्य किस पर आश्रित है - ज्ञान पर क्योंकि ज्ञान के बिना सत्य का पालन नहीं किया जा सकता। आज हमारे पास परमधाम का ज्ञान तो है लेकिन वो केवल मंदिरों में सेवा-पूजा की वस्तु बनकर रह गया है क्योंकि न तो हम उसका चिंतन-मनन करते हैं न ही उसे संसार में फैलाने के कोई गंभीर और सार्थक प्रयास करते हैं। हां, इसके पठन और पारायणों में कोई कमी नहीं है।

वाणी को सिंघासन पर क्यों पधराया गया था ताकि उसके कथन को सर्वोपरि मानकर प्राथमिकता दी जाय क्योंकि जैसाकि वाणी कहती है- 'हक बैठे इन इलम में तो दिल अर्स हुआ मोमिन' (सिनगार २६/२) न कि व्यक्ति या स्थान विशेष के कथन को। बीतक में दिल्ली प्रवास के समय जो लक्ष्मीदास जी का प्रसंग आता है उसकी पीछे भी यही भावना है। स्वयं श्री जी ने सुंदरसाथ से स्पष्ट रूप से कहा कि यदि मैं भी वाणी के विपरीत कुछ कहता हूं तो उसे बिल्कुल नहीं माने। सेवा पूजा में भी हम जो 'आरती अंग चतुर्दश केरी' बोलते हैं उसमें भी वाणी के चौदह ग्रंथों को श्री राज जी के अंगों की उपमा दी गई है। लेकिन आज हमने वाणी, जो अक्षरातीत परब्रह्म का कथन है, को किनारे कर व्यक्ति और परम्पराओं को अधिक महत्व देना प्रारंभ कर दिया है। याद रखिए, एक पीढ़ी का पाखंड ही दूसरी पीढ़ी के लिए परंपरा बन जाता है, अतः ऐसी परंपराओं पर अंधाधुंध चलना किसी भी प्रकार की बुद्धिमत्ता नहीं कही जा सकती।

उदाहरण के लिए, हमारे देश में जब से मूर्ति पूजा का प्रारंभ हुआ है इससे किसको लाभ मिल रहा है - केवल महंत, मठाधीशों और पंडे-पुजारियों को। क्योंकि जो चढ़ावा आता है इन्हीं की सुख-सुविधाओं पर व्यय होता है। यह एक प्रकार से व्यापार बन गया है। खेद की तो बात यह है कि यह परंपरा हमारे समाज में भी प्रारंभ हो गई है। वाणी क्या कहती है-

आग पानी पूजोगे, या सूरत बनाए पत्थर।
कहोगे हमारा हक है, सब की एह नजर।।(खिलवत १६/५५)

यह गरीब और मेहनतकश लोगों के धन का सरासर दुरूपयोग है। हां, यदि इस राशि का उपयोग ज्ञान के प्रसार में होता है तो उससे समाज को अवश्य लाभ मिल सकता है।

इसी प्रकार, आज देश में बड़े-बड़े भव्य मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण पर करोड़ों रुपए खर्च किए जा रहे हैं लेकिन आध्यात्मिक शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं देता। मंदिरों से जहां ज्ञान का प्रकाश फैलना चाहिए, वहीं ऐसा न होकर न केवल संप्रदायवाद को बल्कि कर्मकांड और शरियत को भी बढ़ावा मिल रहा है। यदि मंदिरों पर व्यय की जाने वाली अपार राशि का उपयोग नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों की स्थापना में किया जाता तो देश में तत्व ज्ञान के को बढ़ावा मिलता तथा हम सम्पूर्ण विश्व को अध्यात्म की राह प्रशस्त कर एक सच्चिदानंद परब्रह्म को पाने का मार्ग दिखा सकते थे।

हमनें भी चार सौ से अधिक मंदिर अवश्य बना लिए और इनमें वैभव और सजावट पर बहुत धन व्यय किया गया है। इनमें पूजा-पाठ अवश्य हो रहा है किन्तु इनसे ब्रह्म ज्ञान का कितना प्रसार हो रहा है यह विचारणीय है। इन मंदिरों की तुलना में वाणी के विद्वानों की संख्या नगण्य है। यह सही है कि मूल स्वरूप श्री राज जी की इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता लेकिन फिर भी कहीं न कहीं हमारा भी तो कुछ उत्तरदायित्व बनता है। वाणी कहती है- 'हुकम के सिर दोष दे बैठे न सके मोमिन।' अतः हमें चिंतन करना होगा कि हमारी किस कमी या भूल के कारण वाणी का ज्ञान संसार में नहीं फैल पाया। हम सभी मतों के अनुयायियों को एक परब्रह्म के बारे में बताकर श्री प्राणनाथ जी के झंडे तले ला सकते थे। यही नहीं, विश्व को आतंकवाद से रोकने का सामर्थ्य वाणी में है लेकिन हम ऐसा नहीं कर पाए क्योंकि हमनें इसे आत्मसात करने के स्थान पर मंदिरों की शोभा मात्र बनाए रखा। वाणी कहती है- 'आप देखो औरों को दिखाओ।' हम जागनी और शोभा यात्राएं भी बहुत निकालते हैं जिनमें नृत्य कला के प्रदर्शन के अतिरिक्त क्या होता है? आप कह सकते हैं कि मीरा और रसखान भी अपने आराध्य को पाने के लिए नृत्य करते थे लेकिन क्या उन जैसी प्रेममयी भक्ति हममें है? नृत्य सूफी फकीर भी करते हैं किंतु रात के तीसरे पहर। मेरा उद्देश्य किसी की भावनाओं को आहत करना नहीं है लेकिन शरीर से की जाने वाली भक्ति, वो भी सार्वजनिक रूप से, धनी का साक्षात्कार नहीं करा सकती। वाणी स्पष्ट कहती है-

छिपके साहेब कीजे याद, खासलखास नजीकी स्वाद।
बड़ी द्वा माहें छिपके ल्याए, सब गिरोहसों करे छिपाए।।(बड़ा कयामतनामा १५/१)

उल्लेखनीय है कि इस सृष्टि के समस्त धर्मग्रंथों का ज्ञान जहां आकर रुक जाता है वहां से आगे का ज्ञान हमें प्राप्त होने का सौभाग्य धनी ने हमें प्रदान किया है किन्तु शायद हम समझ नहीं पाए या समझना नहीं चाहते कि तारतम वाणी के रूप में हमें जो प्राप्त हुआ है उसके लिए त्रिदेवा सहित सभी देवी-देवता सदियों से प्रतीक्षा कर रहे थे। यह श्री राज जी के हृदय में बहता हुआ इल्म का सागर है लेकिन हम इसे पूजा की एक किताब समझ कर रूमालों में लपेटे रहे। इसकी महिमा तो श्री महामति जी के अतिरिक्त कौन जान सकता है जिनके तन से यह अवतरित हुई-

मेरे दिल के दरद की, एक साहेब जाने बात।
ऐसा कोई ना मिल्या, जासों करों विख्यात।।(किरंतन१४/२६)

अतः आज आवश्यकता इस बात की है विश्व में वाणी के रूप में आध्यात्मिक ज्ञान का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो, तभी हम 'पसरसी चौदे भवन' के वाणी के कथन को सार्थक करने में सफल होंगे। हम ज्ञान को केवल सुने और सुनाये ही नहीं बल्कि अपने आचरण में भी लायें। तभी इसका वास्तविक लाभ है। कोई भी ज्ञान सुनने मात्र से नहीं बल्कि आत्मसात करने से ही हमें सही मायने में प्राप्त होता है। इसके साथ ही, आज समाज में धर्म के नाम पर जो विकृतियां उत्पन्न हो गई हैं, वे तभी समाप्त होंगी जब हम आध्यात्मिक शिक्षा के महत्व को समझेंगे क्योंकि इसी से ही न केवल हमें परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का बोध होगा कि वह कैसा है, कहां है और उसे कैसे पाया जा सकता है, बल्कि अध्यात्म के मूल प्रश्नों - मैं कौन हूं, मैं कहां से आया हूं तथा इस शरीर और संसार को त्यागने के पश्चात जाना कहां है - का समाधान भी हो सकता है। यही हमारी आत्म-जागृति है। मंदिर अवश्य बनें लेकिन इनके साथ ही व्याख्यान केंद्र, ध्यान कक्ष और पुस्तकालय भी बनने चाहिए जहां ज्ञान की अनवरत धारा बहनी चाहिए। यदि हम ऐसा कर पाते हैं तो आने वाले समय में हमारे समाज और देश का इतिहास कुछ और ही होगा।

(प्रलेखन : के. के. कालड़ा)

श्री राज जी की मेहर की अनुभूति

अनिल श्रीवास्तव
चंडीगढ़

धाम में जैसे हमनें रबद एक साथ किया, वहाँ से आई एक साथ, वैसे ही यहाँ पर सागर में भी एक साथ ही झील रहे हैं यह राज जी की है आपार मेहर। वहाँ पर तो हम सब अंग से अंग लगाकर ऐसे बैठी हैं जैसे अनार के दाने इकट्ठे होते है। वहाँ पर फरामोशी के कारण न तो कुछ कह सकते है न ही कुछ सुन सकते लेकिन राज जी की मेहर उनके इल्म से आत्मा यहाँ पर सबकुछ देख-सुन रही है और यहाँ बैठ कर राजश्यामा जी की स्वरूप को निहार रही है। श्यामा जी की चोली पर जो कांगड़ी लगी है बहुत ही खूबसूरत है, उनमें लगे नगों की खूबसूरती का क्या वर्णन करूं? दोनों बाजुओं में पहने बाजुबंध की शोभा, जिनके फूमन जरी के हैं उनमें हीरा, लसनीय और नीलवी के नग लगे हैं, उनको देख कर तो रूह वहीं की वहीं अटक जाती है। श्यामा जी का चूड़ा है उसकी शोभा का क्या वर्णन करुं उसमें नौ रंग की चूड़ियाँ है। हर एक चूड़ी में अलग-अलग नग लगें हैं अलग-अलग आकार है। चूढ़े के किनारे पर आए कंगन कंचन के हैं, जब श्यामा जी हाथ हिलाती है तो बहुत ही मधुर और सुगंधित ध्वनि उत्पन्न होती है जो अवर्णनीय है। हथेली लाल रंग की है जिसमें राज जी के दिल के सागर लहरा रहे हैं। जब यह हथेली रूहों को छूती है तो रूहें डूब-डूब जाती है। अंगुलियों की शोभा का वर्णन क्या करुं-आठ अंगुलियों में अलग-अलग नगों की मूंदरियां है और अँगूठों में अंगूठियां है। एक कंचन की दूसरी आरसी की अंगूठी है। आरसी की अंगूठी में जब श्यामा जी अपनी छवि निहारती है और फिर राज जी की तरफ देखती है और तिरछे बाण चलाती है। कंचन की अंगूठी तो मानों सिंघासन का स्वरूप है। उनके नखों के नूर का क्या बयान करुं उसके आगे तो यहाँ के हजारों सूर्य भी निस्तेज हो जाते है। श्यामा जी के चरणों की क्या कहूँ वो तो हमारे जीवन है, हमारा ठिकाना है, इनकी तली लाल है जो कि प्रेम का स्वरूप है। उनके चरणों के आभूषण, उनमें लगे नग हम सब रूहें ही तो है जो उनके चरण पकड़ कर बैठी हैं जिससे हमारे दिल को बहुत सकून मिलता है। राजश्यामा जी के अंगों का वर्णन यहाँ की जुबान से कर पाना तो सम्भव नहीं है, बस चितवन से ही निहारा जा सकता है।

जब धामधनी श्यामाजी के मुख में पान का बीड़ा रखते है तो सब रूहों के मुख में पान की मिठास घुल जाती है और लाड़ से श्यामा जी की नजरों में नजरें डालते है तो सबका दिल प्रफुल्लता से भर जाता है। परमधाम की रेती का हर एक कण भी सारे परमधाम के सौन्दर्य से परिपूर्ण है और ऐसे अनगिनत कण हैं परमधाम में। इन सब कणों को मिला कर बने सौन्दर्य से भी अधिक सुन्दर है श्यामा जी का सौन्दर्य, वो इतनी मनमोहक है उनका तो कहना ही क्या। धनी के दिल में जो इश्क मार्फत बसता है और स्वलीला अद्वैत में राज जी का दिल जो स्वरूप धारण करता हैं वो है श्यामा जी,जो इश्क से भरपूर है। जैसे ही किसी रूह ने दिल से श्यामा जी की पूर्ण पहचान कर ली तो उसके लिये तो यह नश्वर तन खत्म हो जाता है। जब तक हमें इस स्वरूप की पहचान नहीं होती, तब तक इस इल्म से राज जी हमें समझा रहे है। राज जी इंद्रावती जी से कह रहे है अपने दिल में देख कर अपने अंगों को ब्यान कर दो। यह सुनना हर एक के बस की बात नहीं है सिर्फ धाम की रूहें ही सुन सकती है और श्यामा जी के मुख की सुंदरता पर बलिहारी जाती हैं। यह स्वरूप तो बस अपने दिल में ग्रहण ही कर सकते है। जब श्यामा जी आरसी की अंगूठी में अपने इश्कमय स्वरूप को देखती है और राज जी से इश्क का आदान-प्रदान करती है तो इस नजारे को देख कर रूहें बलिहारी जाती है। उनकी भौहें, भृकुटि, नेत्र, मुख, नासिका, हाथ और पावों का कैसे वर्णन हो! इन सब अंगों के आभूषणों की क्या कहें सब नूरी है, सब राज जी के दिल का नूर हैं जिनका वर्णन करना मुश्किल है। यह तो राज जी की मेहर है जो इंद्रावती जी द्वारा हम रूहों के वास्ते कहला रहे है। आशिक और माशूक में जो पर्दा होता है वो रंगपरवाली मंदिर में उठता है। बाकी सारे परमधाम में एक हद होती है और हम सब रूहें ऐसे कोमल इश्क को अपने दिल में धारण करती है जिसका जुबान से वर्णन नहीं हो सकता। श्यामा जी जब चलती है,जब चरण उठाती हैं तो वो सब आत्मायें उस जमीन में आकर एक होकर दर्शन करती है और जब रखती है तो स्पर्श का सुख लेती है। ऐसी चाल पर पर मैं बलिहारी जाती हूँ। उनके चरणों के गिरधवाए में आभूषणों के रूप में हम सब रुहें ही तो सज रही है। जब रूहें श्यामा जी के संग चलती है तो सब के आभूषण ऐसी ध्वनि पैदा करते है कि सारा परमधाम संगीतमय हो जाता है। यह युगल किशोर की शोभा है। अगर धामधनी साहस दें व अपनी मेहर बरसाएं तो इसे पीते रहो। यहाँ के शब्द वहाँ पर नहीं पहुँचते पर फिर भी हमनें इन्हें गाते रहना है।

राज जी ने हमारे तन को इतनी महिमा दे दी कि इसके कान और आँख के साथ हमें बातूनी कान और आँख भी दे दिए जिससे हम अखण्ड वाणी सुन रहे हैं और चितवन में राजश्यामा जी का स्वरूप देख रहे हैं। राज जी का स्वरूप चिद्घन स्वरूप है और श्यामा जी उनके दिल का स्वरूप है उनका आनंद स्वरूप है तथा रूहें उनके वाहेदत के स्वरूप है। खिलवत के सुख हकीकत और मारफत में ही होते है। खिलवत और मारफत का मूल स्वरूप राज जी का दिल है। जब यह सुख स्वरूप धारण करते है तो उनका क्या कहना, वो सुख राज जी हम सब रूहों को देते है। यह सुख राज जी अपने नयनों से श्यामा जी के नयनों में देते है और हम सब रूहों को मिलता है। हमने इस खेल को देखने की इच्छा की तो राज जी भी हमारे साथ यहाँ आए और यहाँ आकर भी परमधाम का सुख दिया। यहाँ से भी हम मूल स्वरूप और परमधाम को देख रहे है। यह खेल भी धामधनी ने अपने दिल में ही लिया है जो परात्म को दिखा रहे है। अब यह सारा ज्ञान अपने आवेश स्वरूप द्वारा हम सब रूहों को दे रहें हैं। यहाँ की जुबान से तो इस स्वरूप का वर्णन नहीं हो सकता लेकिन जो अर्स की जुबान राज जी ने बक्शी है वो बयान कर रही है। यह ज्ञान आज तक जाहिर नहीं हुआ था क्योंकि रूहें नहीं आई थी,अब रूहें आ चुकी है इस लिये मारफत का ज्ञान दे रहे हैं क्योंकि रूहों के दिल को रोशन करना था। इस दुनिया को

सिर्फ कर्मकाण्ड और उपासना बता दी और अब इश्क, मारफत और हकीकत का ज्ञान दिया। अब कयामत की शर्त पूरी हो गयी, रूहअल्लाह आ गई और ज्ञान जाहिर हो गया। अब तो हकीकत, मारफत, खिलवत युगल स्वरूप और रूहें जाहिर हो गये हैं। अब राज जी कहते हैं इस सागर में झीलते-झीलते अपने घर वापिस आ जाओ और अपनी सुरता मूल-मिलावे में रखो। अब राज जी प्यार से शोभा देकर रूहों को जागने को कह रहे है और कह रहे है कि तुम ही तो मेरे जीवन हो। राज जी कहते है कि याद करो परमधाम में कैसे हँस-हँस कर खेल माँगा था। तब हमें यह नहीं पता था की यह खेल दुःख का है। हम तो इसको भी रामत ही समझ रहे थे लेकिन राज जी तो इसे भी आनंद का खेल बना रहे है अपनी प्रेम की लीला का ज्ञान देकर। वो कहते है की अपनी सुरता मूल-मिलावे में रखो और वो तब पहुँचेगी जब हम तन, जीव और आत्मा से उन पर आश्रित हो जाएँगे, फिर उनकी मेहर के सुखपाल में बैठ कर परमधाम में सुरता पहुँच जाएगी।

महत्वपूर्ण सूचना

https://youtu.be/to-0PRxHroI

प्राणाधार सुन्दरसाथ जी! आपको जानकारी देते हुए सम्पूर्ण श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ परिवार को अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है कि धाम धनी श्री प्राणनाथ जी की कृपा तथा सद्गुरू महाराज की प्रेरणा से हम श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ आप सबके लिये एक मोबाईल एप (Mobile App) लेकर आया है।

सुन्दरसाथ के लिये इसकी निम्नलिखित उपयोगिताएं हैं, जो इस App को अनिवार्य रूप से डाउनलोड़ करने योग्य बनाती है =

१. इस एक ही एप के माध्यम से आप अपने फोन में सम्पूर्ण वाणी और बीतक की टीका अपनी मनचाही भाषा (१३३ भाषा) में पढ़ और सुन सकते हैं।
२. आप चाहें तो केवल एक स्पर्श (Touch) से टीका पढ़ सकते हैं और ऐसा लगे कि केवल चौपाई पढ़नी है तो टीका अपने आप हट जायेगी।
३. सम्पूर्ण वाणी और बीतक की कोई भी चौपाई के कुछ शब्द लिखकर या बोलकर भी आप पूरी चौपाई खोज सकते हैं।
४. श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ से प्रकाशित साहित्यों को पढ़ सकते हैं।
५. सुन्दरसाथ के त्योहार (बीतक, शरद पूर्णिमा, राज प्रकटन महोत्सव, परमहंसों का जन्मदिन आदि) अवसरों पर जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
६. जागनी अभियान की सभी जानकारी घरों में बैठे-बैठे प्राप्त कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त भी इसके अनेक उपयोग हैं जो इस पोस्ट के साथ दिये गये यू-ट्यूब लिंक (Youtube Link) में जाकर देख सकते हैं। https://youtu.be/to-0PRxHroI

आप इस एप को प्ले स्टोर पर जाकर SPJIN लिखकर भी खोजकर डाउनलोड़ कर सकते हैं अथवा इस लिंक के माध्यम से डाउनलोड़ कर सकते हैं। https://play.google.com/store/apps/details?id=com.spjin.nijanand

आप सबसे आग्रह है कि इस एप को देखने के बाद प्लेस्टोर (Play Store) पर जाकर यह जरूर लिखें कि आपके यह एप कैसा और कितना उपयोगी लगा?

विशेष- यह एप अभी केवल गूगल प्लेस्टोर पर एन्ड्राईड (Android Operating System) के लिये उपलब्ध है। कुछ ही दिनों में एप्पल ios के लिये भी उपलब्ध हो जायेगी।

वर्तमान समय में बीतक की प्रासंगिकता

मनीषा दूबे
जयपुर

श्री लालदास जी कृत बीतक का सम्बन्ध श्री देवचन्द्र जी तथा श्री प्राणनाथ जी के जीवन एवं उनके द्वारा अवतरित तारतम वाणी कुलजम स्वरूप साहब से है। भारतीय इतिहास के मध्य युग में महामति श्री प्राणनाथ जी ने हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक धार्मिक विद्वेष को शान्त करने का संदेश ही नहीं दिया बल्कि हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ, वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत और कतेब पक्ष के धर्मग्रन्थ, ईसाईयों के इंजील, यहूदियों के जंबूर तथा दाऊद पैगम्बर के अनुयायियों के धर्मग्रन्थ तोरेत में मौलिक एकता खोजने का प्रयत्न भी किया। 'बीतक' शब्द वृत्त या वृत्तान्त के अर्थ में हल्लार जनपद में आज भी प्रयुक्त होता है।

श्री लालदास जी (लक्ष्मण सेठ) श्री जी के साथ जागनी कार्य में उनकी काया-छाया की भाँति हमेशा साथ रहे। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि श्रावण वदी वि.सं. १७५१ के दूसरे दिन से पन्ना जी में श्री जी के हुक्म से बीतक साहब का लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ और भादों वदी अष्टमी के दिन पूर्ण हुआ। इसमें ७३ प्रकरण और ४,३७७ चौपाईयों का संकलन है।

उल्लेखनीय है कि बीतक कोई मानवीय इतिहास नहीं है और न ही किसी भगवान, आचार्य, भक्त या शिष्य के द्वारा लिखा गया वृतांत है-

वेदान्त गीता भागवत दिये पुरे सारख।
नही कथा ये दन्तनी सत वाणी की साख।।

स्वलीला अद्वैत सच्चिदानंद परब्रह्म ने अपनी आवेश शक्ति द्वारा श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर उन्हें श्री प्राणनाथ अक्षरातीत के स्वरूप में अपने जैसा ही बना दिया। माया के अन्धकार में भटकती हुई आत्माओं को क्षर, अक्षर से परे अक्षरातीत एवं परमधाम की अलौकिक राह दिखाने की दिव्य लीला का वर्णन करना ही बीतक का उद्देश्य है।

बीतक निजानंद दर्शन का आधार स्तम्भ है जो वाणी, वृत और विराट के गूढ़ रहस्य को स्वप्न की बुद्धि, जागृत बुद्धि से आगे निज बुद्धि में विचरण करता हुआ, इश्क के सागर में अपनी ब्रह्मात्माओं को डुबाकर निजघर

परमधाम (मूल मिलावा) का इसी ब्रह्माण्ड में दिग्दर्शन कराती है-

इत ही बैठे घर जागे धाम, पूरे मनोरथ हुये सब काम

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि बीतक साहब निजानंद सम्प्रदाय की प्रयोगशाला है जिसमें शोधार्थी (खोजी) सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग की यात्रा करके जो चुनता है वही उसका परिणाम होता है।

खोज सोहागिन ना थके, जोलों पार के पारै पार।
नित खोडो चरनी चढ़े, नए नए करे विचार।।

इस जागनी के ब्रह्माण्ड में परमधाम की इन्द्रावती की आत्मा श्री मिहिर राज जी के जीव पर बैठ कर महामति श्री प्राणनाथ जी, जिनको हम श्री राज जी भी कहते है, के आवेश रूप से माया में भ्रमित अपनी आत्माओं की जागृति के लिये पांचों शक्तियों से परिपूर्ण होकर दिव्य ज्ञान के द्वारा उनकी फरामोशी तोड़ने का सफल प्रयास करती है।

वस्तुतः सतयुग में हर जीवात्मा की रहनी ज्ञान, विश्वास, आचरण, ध्यान और आत्मबल से परिपूर्ण थी। चारों आश्रम में जीवन जीते हुये व्यक्ति नैतिक जिम्मेदारियों का वहन करता था। मगर प्रकृति, जिसे हम माया कहते है (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द), के प्रभाव में आकर मानव अपने आप को ब्रह्म समझने लगा। शक्ति के दुरुपयोग के कारण उसकी मानसिक चेतना विलुप्त होने लगी और मानव दानव बनने लगा जिसके परिणामस्वरूप ईश्वरी चेतना को इस धरा पर आना पड़ा। चूंकि ब्रह्माण्ड के संचालन का दायित्व त्रिदेवा - ब्रह्मा, विष्णु, महेश - का है इसलिये विष्णु जी ने सत्य की रक्षा के लिये नरसिंह, वामन, मस्त्य आदि अनेक अवतार लेकर पृथ्वी की रक्षा की। आचरण में अत्याधिक मनोविकार आने से ध्यान लुप्त हो गया। जीव बुरे कार्यों में लिप्त होता चला गया। आचरण को सुधारने के लिये त्रेता में भगवान श्री राम आये जिन्होंने युग को मर्यादा का पाठ पढ़ाया। मर्यादित जीवन जीने और उसका उल्लंघन करने के क्या परिणाम होता है स्वयं भगवान राम ने जीवतं उदाहरण देकर बताया।

भूमि, गगन, वायु, अग्नि और नीर जो हमारे पांच तत्व हैं उनका यदि विवेकपूर्ण उपयोग किया जाये तो हम विश्वास, वैराग्य और विश्राम की स्थिति को प्राप्त करते हैं। मगर इनका दुरुपयोग किया जाये तो अविश्वास, राग्य और विनाश का द्वार खुल जाता है। रामायण इसका जीता जागता प्रमाण है।

जब ध्यान, आचरण जाने के बाद विश्वास भी टूटने लगा तो सन्देह के वातावरण से मुक्त कराने के लिये द्वापर में योगेश्वर श्री कृष्ण, जो न केवल प्रेम और करूणा के प्रतीक है बल्कि एक कुशल राजनीतिज्ञ एवं शासक के रूप में मानव को अपने कर्त्तव्य बोध का ज्ञान दिया।

श्री कृष्ण की इतनी लीलायें द्वापर में हुई कि मानव बुद्धि भ्रमजाल में फंस गई कि वास्तव में सत, चित और आनन्द में रहने वाले पूर्णब्रह्म परमात्मा कौन हैं? वस्तुतः श्री कृष्ण के वास्तविक स्वरूप और लीला का बोध बिरले लोगों को ही है।

क्रुष्ण क्रुष्ण सब कोई कहे, पर भेद न जाने कोए।
नाम एक विध है सही पर रूप तीन विध होए।।

सबने अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने वाले रूप को परमात्मा का नाम देकर कई सम्प्रदाय, पंथ और मत-मतांतरों का उद्‌भव कर दिया। फलस्वरूप श्री कृष्ण की लीला में छिपे आवेश स्वरूप सच्चिदानंद को देखने वाली दृष्टि कलयुग के प्रभाव में आकर सम्प्रदायों में झगड़ा उत्पन्न करने लगी। लोग आस्तिक और नास्तिक का जीवन जीने लगे। अक्षर ब्रह्म के मन के स्वरूप आदिनारायण के द्वारा निर्मित ब्राह्मण में जब प्रेम का स्थान ईष्या और द्वेष ने ले लिया तो आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाने के लिये कलयुग में परमधाम का ज्ञान लेकर स्वयं अक्षरातीत अपनी ब्रह्मांगनाओं के साथ इस धरती पर आये।

साहेब आये इन जिमी कारज करने तीन।
सो सबका झगड़ा मेटके या दुनिया या दीन।।

इसीलिये, जो सतयुग में तप कर रहे थे उन्हें मालूम था कि पूर्णब्रह्म आने वाले हैं जो उनकी लीलाओं के साक्षी बनने और उसका आनंद लेने के लिये उत्तम जीवात्मा बन रहे थे।

आवसी धनी धनी रे सब कोई केहेते, आगमी करते पुकार।
सो सत बानी सबों की करी, अब आए करो दीदार।।

श्री लालदास जी ने इश्क-रब्द की चर्चा तथा महाकारण की पृष्ठभूमि में ब्रह्मात्माओं की फरमोशी दूर करने के लिये चर्म चक्षु, ज्ञान चक्षु और दिव्य चक्षु से परे आत्म चक्षु खोलने का सफल प्रयास किया है ताकि हम इश्क और इल्म से वास्तम के तारतम के तारतम में गोते लगाकर अपनी निसबत की पहचान कर सकें। प्रकाश हिन्दुस्तानी में श्री जी फरमाते हैं-

सुख बड़े तारतम के, क्यों जाहेर कीजे।
वानी माएने देखके, जीव जगाए लीजे।।(३१/१४४)

और जब जीव जागृत हो जाये -

इलम दिया तुम खुदाई, तब बदले कौल चाल।
फैल होवे वाहेदत का, तब बेर न लगे हाल।।(खिलवत १५/६२)

जब हम अपनी रहनी, करनी और कथनी में समभाव के एकत्व का उदय कर लेते हैं तब हमें बीतक में छिपे रहस्यों का वास्तविक मर्म समझ में आता है। तब हम श्री प्राणनाथ जी को अपना प्रियतम मानकर जागनी के ब्रह्माण्ड में प्रवेश करते है तो हमें जीव से ईश्वरी, ईश्वरी से ब्रह्म सृष्टि तक की यात्रा को पूर्ण करते हुये अंगना भाव में प्रवेश करना पड़ता है। तभी हमारे अन्दर निसबत या अंकुर है या नहीं, ये दावा लेकर ही हम निजानंद में डूब सकते हैं। धामधनी ने अपनी अंगनाओं को याद दिलाने के लिये ब्रज, रास, जागनी और फिर परमधाम की साक्षात लीला परना परमधाम में करके दिखाई ताकि मोमिनों के अन्दर सजगत, दृढ़ता, निष्काम प्रेम और समर्पण का उदय हो-

बेशक इलम सीखक, ऐसे खेल को पीठ दें।
देखो कौन आवे दोड़ती आगू इश्क मेरा ले।।(खिलवत १६/८५)

आज के समय में यदि हम बीतक को अपनी रहनी में उतारते हैं तो न केवल धार्मिक क्षेत्र में फैल रही विकृतियों का वरन् देश में फैल रही सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं यथा अतिवाद, आतंकवाद, जातिवाद, छुआछूत, आदि का समाधान भी सरलता से किया जा सकता है।

यही नहीं, बीतक से हमें यह भी पता चलता है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के इस धरा धाम में आने का क्या उद्देश्य है? धैर्य, लगन और उत्साह का परिचय देकर वे कैसे अपने प्राण प्रियतम के दर्शन पाते हैं और मूल स्वरूप के आदेश को शिरोधार्य कर इस जग में भूली आत्माओं को निज घर की याद दिलाने के लिये तारतम ज्ञान देते हैं।

श्यामा महारानी का आवेश और सुंदरबाई की परात्म की पहचान हो जाने पर अपने प्राणेश्वर पर पूर्ण समर्पण की भावना रखते हुये, तेज कुंवरी, फूल बाई आदि पात्रों का अभिनय करते हुये, संसार को अपनी मर्यादा, संस्कार और संस्कृति की रक्षार्थ अपना आत्म-बलिदान भी देने में पीछे नहीं रहना चाहिये, इसकी प्रेरणा देते हुए निष्काम प्रेम सेवा का सुन्दर पुष्प बीतक इस संसार का प्रदान करती है।

इसी प्रकार, श्री छत्रसाल जी द्वारा माया में रहते हुये भी माया से अलग रहकर अपने धनी की सेवा बंदगी में पूर्ण समर्पण करना तथा अपने कर्तव्य और धनी की आज्ञा को शिरोधार्य कर सुन्दरसाथ जमात की हृदय से प्रेम पूर्ण सेवा करना गुरु-शिष्य परम्परा का अनुपम और अद्वितीय उदाहरण हमें बीतक साहब में ही देखने को मिलता है।

इन्द्रावती की आत्मा सजगता, दृढ़ता और समस्त संसार को शीतलता प्रदान करते हुये जागनी के ब्रह्माण्ड में अक्षरातीत की शोभा मिलने पर भी अपने प्राण प्रियतम को एक पल भी नही भूलती। धनी के हुक्म से वह सुन्दरसाथ जमात को, चाहे वे १२ मोमिन हों या अन्य, उन्हें समयानुकूल निर्णय लेने, फकीरी भेष धारण कराकर उनके अन्दर संतोष भाव का उदय कराती है। हमें बीतक से यह भी शिक्षा मिलती है कि हर पल धनी का शुक्राना करते हुये प्रेम, करुणा या को भावना रखनी चाहिये। और यही सिखापन देते है कि हर पल हमे धनी का शुकराना करना चाहिये तथा प्रेम, करुणा और दया की भावना जन-जन में उदित करने का प्रयास करना चाहिये।

हरिदास जी से मिलकर श्री देवचन्द्र जी जी ने 'सखी भाव भजिए भरतार' भाव से अपने आराध्य की पूजा करना सीखी। गुरु द्वारा यह आदेश देने पर कि जो मन्त्र आपके पास है उसे किसी ओर को दान में दे दो, श्री देवचन्द्र जी कहते है यदि आप के द्वारा दिया गया मंत्र प्रभावशाली होगा तो मेरे पास जो मंत्र है वह स्वयं ही मेरे मानसिक पटल से हट जायेगा। शिष्य के इस उत्तर को सुनकर हरिदास जी गदगद हो जाते हैं। बीता का यह ज्ञान हमारे लिए सिखापन है कि यदि छोटों से भी ज्ञान मिले तो हमें तुरंत ले लेना चाहिए।

यही नहीं, इस संसार की कार्यव्यवस्था में परिवर्तन न करते हुए हर रिश्ते की रक्षार्थ श्री देवचन्द्र जी उस समय जब हरिदास जी उनके स्वरूप की पहचान कर उनके चरणों में सिर झुकाते है। गुरू-शिष्य का सम्बन्ध बना रहे इसलिये तत्क्षण भोजनगर छोड़कर नवतनपुरी चले जाते है। सच्चे सतगुरू की पहचान होने पर गुरु बने हरिदास जी श्री देवचन्द्र जी से तारतम लेते हैं। कबीर दास जी ने इसलिये कहा है-

यह तन विष की वेलडी, गुरु अमृत की खान ।
शीष दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

तारतम मिलने पर श्री देवचन्द्र जी जब निज घर का ज्ञान सुनाने के लिये व्याकुल होकर हजामत करने वाले को पैसे देकर वह ज्ञान सुनाना चाहते हैं मगर वह नहीं सुनना चाहता है - यह दृश्य हमें यह सिखापन देता है कि दया, दान, सेवा सब प्रकार से गुप्त रूप से करनी चाहिए। पात्र को देख कर ही चर्चा करनी चाहिए-

दया, दान, सेवा सर्वा अंगे, डीजे ते सर्वे गोप।
पात्र ओलखीने कीजे अरचा, सात्र अरथ जोइये जोप।।(किरतन १२६/२७)

जैसे केशरी सिंहनी का दूध सोने के पात्र में ही समाता है दूसरे पात्र में छेद कर निकल जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म ज्ञान न को सुनाने के लिये भी पात्र होना चाहिए। हमें सही समय और परख कर ही अपने हृदय की बातों को किसी से कहना चाहिए।

जन्म उसी का सफल माना जाता है जो खुद जागे और अपने वशं परिवार की भी जागनी करे। समाज की की जागनी करे। गांगजी भाई ने तारतम लेकर अपने गुरू की अपने घर पर पधरावनी की। यह दृश्य हमें यह प्रेरणा देता है कि सुन्दरसाथ का जैसे समागम हो वही स्थान मन्दिर बन जाता है। सन्त वाणी यह उद्घोष करती है कि मानव को सबसे पहले अपने हृदय को ही मन्दिर बनाना चाहिए।

गांगजी जी भाई का तन, मन, धन अपने गुरू चरणों में समर्पित था, इसलिये आज भी उनका घर चाकला मन्दिर के रूप में विख्यात है। गोवर्धन भाई यह शिक्षा देते हैं कि कही भी जाने से पहले वहां की क्या सत्यता है यह जानने के बाद ही जाना चाहिये ।

बच्चों मे संस्कार का उदय उनके आस-पास घटित घटनाएं ही उनके भविष्य का सुन्दर सृजन करती है। जिज्ञासा का उदय होने से ही व्यक्ति आगे बढ़ता है। मिहिर राज बचपन से ही अपने परिवार में धार्मिक वातावरण को देखते थे और सत्संग की वार्ता सुनकर सतगुरु का दर्शन करने की मनोस्थिति तैयार करते हैं।

बीतक साहब में आये हर एक ब्रह्ममुनि, चाहे वो बिहारी जी हों, महावजी भाई, चित्तांमणी जी, या जयराम कंसारा, सभी हमें यही शिक्षा देते हैं कि सृष्टि को धारण करने वाला धर्म हो तथा धर्म के जो लक्षण हैं उनको आचरण में लाये बिना कोई भी समाज सुखी तथा वैभवशाली नहीं बन सकता।

वर्तमान समय में बीतक ग्रन्थ की शिक्षा को लेकर हम एक सुन्दर समाज का ही नहीं सुंदर विश्व का भी सृजन कर सकते हैं। बीतक हमें यही शिक्षा देती है कि हमें आत्म जागृति के लिये आत्म चिंतन करना चाहिए, ज्ञान का अहंकार नहीं करना चाहिए, आहार की सात्विकता रखनी चाहिए और जीवन पथ पर धैर्य के साथ विपरीत परिस्थितियों मे सफलता हासिल करनी चाहिए।

हमें यह भी याद रखना होगा कि खंडनी से जागनी नहीं होती बल्कि प्रेम भाव से सभी को एकरूप करना चाहिए। श्री लाल दास जी का जीवन दर्शन हमें प्रबंधन की कला से भी अवगत करता है जिसका अध्ययन हम एक हम किसी भी संगठन या संस्था के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक साधनों का उचित्व एवं श्रेण्ठतम उपयोग कर सकते हैं।

मूर्ति पूजा कितनी उचित ?

ब्रह्मलीन आशा गिरधर
कानपुर

मूर्ति अर्थात किसी आकार को मूर्त रूप देना। वो किसी चित्रपट पर भी हो सकता है या किसी धातु, पत्थर या मिट्टी पर। कलाकार अपने रचना कौशल से उसे सुन्दर से सुन्दर रूप दे सकता है। मूर्ति सदैव स्थूल आकार की ही गढ़ी जा सकती है। सूक्ष्म को मूर्तरूप देने में रचनाकार कोरी कल्पना का सहारा लेता है। वह अपना सम्पूर्ण कौशल लगाकर भी सत्य के समीप नहीं पहुँच सकता। परम सत्ता, ईश्वर जो सत्य, चेतन और आनंदमयी है, उसे जड़ तत्व में बांधकर भला कैसे रखा जा सकता है यह विचारणीय है। हां, मानवीय आकार की मूर्ति बनाना सम्भव है। कुछ लोग तर्क दे सकते हैं कि राम, कृष्ण, हनुमान, शिव या किसी भी देवी-देवता की मूर्तियां बनाकर उसकी पूजा करने का विधान युक्तिसंगत है। वस्तुतः ये भी कल्पना का सहारा लेकर ही गढ़ी जाती हैं। यदि ऐसा न होता तो सभी मूर्तियां एक समान होती परन्तु ऐसा नहीं है। किन्हीं भी दो स्थानों पर बनी हुई एक ही स्वरूप की मूर्तियां समान नहीं होती।

अच्छा होता यदि मूर्तियां बनाकर पूजा करने के स्थान पर याद हम अपने इष्ट के गुणों और आदर्शों को जीवन में अपना लेते। भला भौतिक पाँच तत्वों में उन आदर्शों को कैसे समेटा जा सकता जो चिर नवीन, नूतन एवं चेतन है? प्राचीन काल से ही हमारे अंधविश्वासों की परिधि को तोड़ने के लिए समय-समय पर मनीषियों ने अनेक प्रयास किए। फिर भी हर धर्मावलम्बी कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप से मूर्ति पूजा करते ही चले आ रहे हैं। सनातन धर्मावलम्बी तो पूर्णतः मूर्ति पूजा के लिए प्रसिद्ध हैं। इस्लाम धर्म के मानने वाले यों तो मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं, हिन्दुओं को बुतपरस्त काफिर कहकर नकारते रहे हैं परन्तु स्वयं मजारों पर जाकर धूप जलाते हैं, चादरें चढ़ाते हैं और मनौतियां मांगते हैं। यह मूर्ति पूजा हो तो कही जाएगी। ईसाई मत वाले भी ईसा मसीह का क्रास, माता मरियम की पाषाण प्रतिमा और क्रास सहित ईसा की प्रतिमा बनाकर गिरजाघर के अन्दर या बाहर सुसज्जित करते हैं। यह भी परोक्ष रूप से मूर्ति पूजा ही कहीं जायगी। बौद्ध मतावलंबी बौद्ध मठों में महात्मा बुद्ध की पाषाण प्रतिमा के समक्ष नतमस्तक होते हैं तो जैन मत वाले अपने चौबीसों तीर्थंकरों की मूर्तियां बनाकर मस्तक झुकाते हैं। यह बात अलग है वे उनका न तो श्रृंगार करते हैं न ही भोग लगाते हैं। चाणक्य नीति में कहा गया है-

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्।।

अर्थात् न ही लकड़ी या पत्थर की मूर्ति में, न ही मिट्टी में देवता का निवास होता है,अपितु देवता का निवास तो भावों यानि हृदय में होता है, अतः भाव ही सर्वोपरि ही है। दूसरे शब्दों में, हृदय में ही देवता का निवास है।

कबीर दास जी तो मूर्ति पूजा के घोर विरोधी थे। उन्होंने अपने अनेक दोहों में हिन्दू और मुसलमान दोनों को अपने तरीके से सीधे-साधे शब्दों में अपने विरोध का शिकार बनाया है। वे मुसलमानों के लिए लिखते हैं-

कांकड़ पत्थर जोड़ कर, मस्जिद लई चिनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाग दे, क्या बहरा भया खुदाया।।

इसी प्रकार, हिन्दुओं को फटकारते हुए कहते हैं-

पाषाण पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़।
ता ते घर की चाकी भली, पीस खाय संसार।।

आर्य समाज के प्रवर्तक, प्रबुद्ध विचारक एवं समाज सुधारक स्वामी दयानंद जी मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए कहते हैं - 'सोचिए यदि मूर्तियों पूजा करके ही ईश्वर को साक्षात्कार किया जा सकता तो हिमालय की कन्दराओं में जाकर कठोर तप करने की ऋषि-मुनियों को क्या आवश्यकता थी? वे भी अपने साथ स्थूल मूर्तियाँ अवश्य ले जाते, परन्तु ऐसा नहीं हुआ।'

वस्तुतः धर्मग्रन्थों के गूढ़ अर्थ न समझने वाले और वैदिक परम्पराओं को जीवन में न अपनाने वालों के लिए संभवतः मूर्ति पूजा क्षम्य भी हो सकती है परन्तु सब कुछ जानते समझते हुए स्वयं को विद्वान कहलाने वालों के लिए तो कदापि उचित नहीं। मूर्ति पूजा के अच्छे कम और बुरे परिणाम अधिक हैं। क्राइस्ट के सलीब की पूजा करना और सलीब के अभिप्राय को भुला देना कहाँ तक उचित है? किसी महान आध्यात्मिक गुरु की मृत्यु के पश्चात् सामान्यतः उनकी मूर्ति या चित्र रखकर उसकी पूजा की जाती है। परंतु यह तभी तर्कसंगत है जब तक आप उनके गुणों को याद रखें और उनका अनुकरण करें। परन्तु यदि आप उनके आदर्शों को, आचरण को भुलाकर दिन-रात धूप-दीप जलाने, भोग लगाने मात्र में ही उलझ गए तो आपने उस अनन्त सत्ता को विस्मृत कर दिया। सच्चे भक्त कभी बाह्य आडम्बरों का घेरा तोड़कर अपनी चेतना को उस परम सत्ता पर केन्द्रित करके गहरे प्रेम और एकाग्रता के साथ एकाकार हो जाते है। एक मनीषी के शब्दों में- 'वह भक्त मूर्ख है जो ईश्वर की परम चेतन सत्ता को किसी रूप में बांधकर उसके दिव्य स्वरूप को भूल जाता है।'

रामकृष्ण परमहंस, जो सदैव मां काली को परम सत्ता मानकर उनका ध्यान करते थे और उनसे वार्तालाप भी करते थे, ने बाद मे कहा- 'मुझे ज्ञान की तलवार से अपनी मां के परिमित रूप को नष्ट करना पड़ा ताकि मैं उसके अनन्त दिव्य स्वरूप का दर्शन कर सकूँ।'

अब आइए अपने निजानंद सम्प्रदाय की स्थिति देखें। महामति श्री प्राणनाथ जी ने मूर्ति पूजा का सर्वथा खण्डन किया। उन्होंने वाणी में, जिसे हम श्री राज जी का साक्षात वाङ्मय स्वरूप मानते हैं और स्वयं राज जी के मुखारविन्द से अवतरित हुई जानते और समझते हैं, ने स्थान-स्थान पर कठोर शब्दों में मूर्ति पूजा को नकारा है। परमधाम से खेल में आने से पूर्व भी राज जी ने आत्माओं को चेतावनी देते हुए स्पष्ट कहा था कि मायावी दुनिया में जाकर तुम मिट्टी, पानी, पत्थर और आग की पूजा में संलग्न होकर अपने प्रियतम को सर्वथा भूल जाओगी-

आग पानी पत्थर पूजोगे, या सूरत बनाए पत्थर।
कहोगे हमारा हक है, सब की एह नजर।।(खिलवत १६/५)

परन्तु आज हमारा सम्प्रदाय भी इस कुप्रथा से बच नहीं पाया। हम कहते तो हैं, हमारे श्री राज जी का स्वरूप अनुपम, अद्वैत, दिव्य, कान्तियुक्त, परम ऐश्वर्यशाली, नित नवीन, चेतन नूरमयी है तो हमने उनका चित्र बनाकर अपने स्वयं को उपहास का पात्र नहीं बनाया? कहीं-कहीं तो महामति श्री प्राणनाथ जी के भौतिक तन अर्थात् मेहराज ठाकुर जी के चित्रों की पूजा-अर्चना हो रही है, आरती उतारी जा रही है व भोग लगाए जा रहे हैं। क्या हमारे ये कृत्य युक्तिसंगत है? सोचिए और स्वयं निर्णय कीजिए। यदि यह उचित हो तो श्री महामति प्राणनाथ जी अपने जीवन काल में स्वयं सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के चित्र अथवा मूर्ति बना कर पन्नाजी के मन्दिर में पूजा-अर्चना के लिए सुन्दरसाथ को न प्रेरित करते? अथवा महामति जी के अन्तर्ध्यान के पश्चात छत्रसाल जी स्वयं उनकी स्वर्ण प्रतिमा बनाकर न पूजते परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। क्यों? यह हम सबके गूढ़ चिन्तन का विषय है।

महामति जी के आदेशानुसार ही मन्दिरों में वाणी पधराने व वाणी को ही साक्षात् राज जी का स्वरूप मानकर पूजा-अर्चना करने की परंपरा प्रारंभ हुई। ऐसा न करके क्या हम अपने धनी या हकी स्वरूप की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर रहे? अन्य सम्प्रदायों या मतावलम्बियों को तो क्षमा मिल जायेगी परन्तु हम स्वतः ही हंसी के पात्र बनते जाएँगे।यदि ऐसा ही होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हम मन्दिर प्रांगण में मूर्ति के साथ वाणी पधराने के सहभागी बन जाएँगे। हम गर्व के साथ किस मुँह से सबके समक्ष कहेंगे कि हम मूर्तिपूजक नहीं? हम उस सच्चिदानंद पूर्ण परब्रह्म के उपासक हैं जो शाश्वत है, नूतन है, चेतन है और नूरमयी हैं।

मूर्ति या चित्र समय से पुरानी भी होगी, चित्र फटेंगे ही, फिर हमारी अखंडता मात्र ढोंग न रह जायेगी? जरा विवेकपूर्ण सोचिए कि हम किस दिशा में जा रहे हैं? कौन है जो हमें भ्रमित कर रहा है? समय रहते इस कुप्रथा को फैलने से रोकना होगा। याद रखिए, असत्य भाषी जितना पापी होता है असत्य का साथ देना देने वाला भी उतना ही दोषी माना जाता है। अन्त में, महामति जी के मुखारविन्द से उच्चरित शब्दों को देखिए-

रसमें सब जुदी लई, मांहों माहें कई लरत।
आप बड़े सब कहावहीं, पानी, पत्थर, आग पूजत ।।

वर्तमान समय में ब्रह्मवाणी का महत्व

कांता भगत
दिल्ली

वर्तमान समय में ब्रह्मवाणी का महत्व जानने से पहले यदि हम ब्रह्मवाणी के विषय में जानना उचित होगा। ब्रह्मवाणी साक्षात श्री जी साहेब जी का स्वरूप है- इसकी चौदह पुस्तकें उन्हीं के चौदह अंग हैं। जब श्री जी साहेब ने अन्तर्धान की लीला की तो अपना साक्षात स्वरूप जो सुन्दरसाथ को दिया वह यही ब्रह्मवाणी थी जिसे उन्होनें अपने सामने गुम्मट जी में सिंहासन पर पधरवाया। स्वयं श्री राज जी ही इस वाणी में विराजमान हैं। सिनगार वाणी में कही गई निम्न चौपाई का भाव यही है- 'हक बैठे इन इलम में, तो दिल अर्श हुआ मोमिन।'

पाँचवें दिन की लीला में जब श्री जी साहेब जी बंगला जी में विराजमान थे तब सुंदरसाथ ने उनकी सेवा परमधाम के भाव से धनी जानकर की। वाणी समय-समय पर उतर रही थी, वाणी गायन के द्वारा श्री जी साहेब जी को परमधाम के भाव से रिझाया जाता था। उनके अन्तर्धान के पश्चात् १३ वर्ष छत्रसाल जी द्वारा श्री कुलजम स्वरूप वाणी का प्रचार-प्रसार जोर- शोर से हुआ। बीतक साहेब में इसी प्रसंग पर चौपाई लिखी है-

साथ सौंपिया आप श्री राज को, जाहेर में श्री महाराज।
फिरत अब हम धाम को, तुम रहो सावचेत आज।।(७/२३)

परन्तु इसके पश्चात् श्री देवचन्द्र जी की पाती के हिसाब से भी देखें तो काफी समय तक वाणी ढपी रही। सुंदर रूमालों में ढ़ांप कर विधिवत् पूजा-अर्चना करना ही नियम बन गया। इसका सबसे बड़ा कारण यही था कि ब्रह्मवाणी के गुझ भेदों से सर्वसाधारण अपरिचित थे। तत्पश्चात समाज के कुछ जाने-माने विद्वानों तथा वाणी मर्मज्ञों के पुरूषार्थ तथा परिश्रम के परिणामस्वरूप श्री कुलजम स्वरूप वाणी के टीके प्रकाशित होने से यह अल्प शिक्षित सुंदरसाथ को भी समझ आने लगी तो इसका चिन्तन-मनन-मंथन होने लगा। यह बिल्कुल सही है कि वाणी का मंथन-चिन्तन-मनन जितना वर्तमान समय में हुआ है इतना पहले कभी नहीं हुआ परन्तु इस का महत्व न पहले कम था न अब कम है और न ही कभी भविष्य में कम होगा। क्या सूर्य का महत्व कभी कम अथवा अधिक हुआ है? जो आज है वही कल था और वही भविष्य में भी रहेगा। यह वाणी-रूपी सूर्य है जिसके उदय होते ही

चाँद-सितारों की रोशनी का कोई महत्व नहीं रहता- "वाणी गरजत मांझ संसार, खोजी खोज मिटावे अंधार।"

क्योंकि यह वाणी कोई साधारण शाब्दिक ज्ञान नहीं है- खुदाई इलम है जिसके बिना सारा संसार सूना था। यह देवी-देवताओं तथा सभी प्रकार के कर्मकाण्ड को छुड़वाकर एक पारब्रह्म का पूजक बनाती है। इसे सुनने और समझने से पारब्रह्म की पहचान हो जाती है जिससे व्यक्ति मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। यही कारण है कि सभी प्रकार के सांसारिक ज्ञान के ऊपर कलश की भाँति सुशोभित हो रही है यह वाणी। इसे पूर्णब्रह्म की आनन्द अंग श्यामाजी स्वयं अपनी रूहों के लिए लेकर आई है। जहाँ श्यामाजी है वहीं राज जी हैं। संसार में प्रचलित कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है जो पूर्णब्रह्म परमात्मा से सम्बन्ध जोड़कर पूर्ण सत्य का साक्षात्कार करवा सके। केवल इसी वाणी के द्वारा पारब्रह्म से प्रत्यक्ष बातें होती है, बशर्ते कि हम इस वाणी के कथनों को बड़े भाव से ग्रहण करें-

सनंधे-सनंधे साखियाँ, तिन साखी-साखी पाव।
पाव-पाव के हरफ के, तुम लीजो दिल दे भाव।।(सनंध ३६/३५)

यह वह ब्रह्म ज्ञान है जिसके बिना किसी को भी मुक्ति नहीं मिल सकती, यही कारण है कि सारा संसार सदियों से इसकी प्रतीक्षा कर रहा था। यहाँ तक कि लक्ष्मी जी ने भी सात कल्पांत तक तपस्या की। त्रिदेवा सदा समाधि में दिखाई देते हैं। यही नहीं, ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि जो परमधाम और अक्षरधाम से उतरी है वे भी अपने-अपने धाम में बिना तारतम ज्ञान के नहीं जा सकती-

दोऊ गिरो जो उतरी, दोऊ असों से आई सोए।
सो आप अपने अर्स में, बिन लहुनी न पोहोंचे कोए।।(सिनगार २७/४२)

परमहंस महाराज श्री गोपाल मणि जी का उदाहरण लीजिए, जिन्होनें २० वर्ष की आयु में वैराग्य लिया। सभी सिद्धियां प्राप्त हो गई परन्तु शान्ति नहीं मिली। २१६ वर्ष की आयु में श्री कृष्ण मन्त्र (चूड़ामणि मन्त्र) लिया। रास बिहारी श्री कृष्ण के दर्शन भी हुए। २३८ वर्ष की आयु में तारतम ज्ञान मिला तो सम्पूर्ण परमधाम का दर्शन होने लगा। तारतम ज्ञान के बिना इतना कुछ प्राप्त करने के पश्चात् भी आत्मा जाग्रत नहीं हुई।

संसार के अधिकतर सम्प्रदाय जातीयता तथा क्षेत्रीयता की संकुचित सीमाओं को पार नहीं कर सके परन्तु यह ज्ञान तो पूरी मानव जाति के लिए है। वर्तमान समय में हिन्दु-मुस्लिम के पारस्परिक झगड़ों की बुनियाद को भी समाप्त करने की क्षमता इस ब्रह्मवाणी में हैं। श्री प्राणनाथ जी मुख्यतः तीन काम करने के लिए आये हैं- हिन्दु-मुस्लिम अथवा अन्य जातियों के झगड़े, गादीवाद या व्यक्तिवाद की पूजा को समाप्त करना,

हिन्दुओं को वेद तथा मुस्लिमों को कुरान के जाहेरी अर्थों की भटकन से बचाकर एक सच्चिदानंद पूर्णब्रह्म की पहचान करवाना-

साहेब आए इन जिमी, कारज करने तीन।
सो सबका झगड़ा मेट के, या दुनिया या दीन।।(खुलासा १३/८६)

अनसुलझी आध्यात्मिक ग्रन्थियों का सुलझाव इस ब्रह्मवाणी के द्वारा ही संभव हुआ है। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मृत्यु के पश्चात् कहाँ जाना होगा, मानव की मुक्ति का स्वरूप क्या है, पारब्रह्म का धाम, उसकी लीला, उसका स्वरूप क्या है, इन सब प्रश्नों का समाधान इस ब्रह्मवाणी के द्वारा ही संभव हुआ है। आज के समय में जब अनेक धर्मों का जाल बिछा हुआ है संसार के लोग अध्यात्म के नाम पर पीरों-फकीरों की मजारों की पूजा में लगे है, देवी-देवताओं के स्थान बने हुए हैं जहाँ पर भक्तों की भीड़ अपनी शारीरिक सुख- समृद्धि को पाने के लिये दर्शनार्थ जाती है। श्री कुलजम स्वरूप वाणी के प्रचार-प्रसार से यह व्यक्तिवाद की पूजा का रोग जड़ से भी मिट सकता है। सदियों से कर्मों की दासता में जलती हुई दुनिया को अखंड मुक्ति भी केवल इसी ब्रह्मज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होगी। 'सुख-शीतल करूं संसार' की भावना से ओत-प्रोत है। समस्त मानव जाति को स्वप्न की बुद्धि से हटाकर जाग्रत बुद्धि के द्वारा सारे ब्रह्माण्ड का कल्याण करने की भावना भी केवल इसी ब्रह्मवाणी में ही निहित है।

रामायण, गीता, भागवत इन सब ग्रन्थों के भेद ब्रह्मवाणी के द्वारा ही खुले हैं। इन सब ग्रन्थों पारब्रह्म परमात्मा के द्वारा साक्षियाँ भेजी गई हैं परन्तु इस संसार ने इन ग्रन्थों के मुख्य नायकों के नामों की पूजा शुरू कर है जबकि पारब्रह्म परमात्मा नाम, तत्व, गुण, षट् प्रमान से परे है। महात्मा गाँधी जैसे सन्त ने भी इसी ब्रह्मवाणी को सभी वाणियों के ऊपर का स्थान दिया था।

बड़ी गम्भीरता से सोचने का विषय तो यह है कि श्री जी साहेब जी हमारे लिए क्या संदेश लेकर आये हैं और हम क्या रहे हैं। यदि हम वाणी के कथानुसार नहीं चलते तो वाणी का प्रभाव हम पर नहीं होगा जबकि सारे ब्रह्माण्ड को मोक्ष देने का अधिकार ब्रह्मसृष्टि को दिया गया है। जीव के ऊपर आत्मा बैठी है इसलिए जीव को ही पाल बांधी है और बांधनी कैसे है - काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार जैसे अवगुणों को छोड़कर नम्रता, गरीबी, धैर्य, शील और सन्तोष जैसे गुणों को अपना कर।

हमें 'जागो और जगाओ' के नारे को कुछ और भी बुलन्द करना है। यदि बीतक साहेब की ओर नजर डालें तो पता चलता है कि श्री जी साहेब जी ने कितनी नम्रता तथा धैर्य से लगभग दो मास तक हरजी व्यास से भागवत का ज्ञान सुना था। इसके पश्चात् अपना परिचय दिया था। जिस प्रकार सुगन्धि पवन में फैलती है तो चारों ओर का वातावरण सुगन्धित हो जाता है, इसी प्रकार दासों के भी दास बनकर ब्रह्मवाणी के ज्ञान को फैलाना है। इश्क के जोश को दिल में लेकर जागनी का नारा लगाना है क्योंकि इश्क की आग माया को ऐसे भस्म कर देती जैसे दाना और घास अग्नि में भस्मीभूत हो जाते हैं-

ले चले रोशनी दासानुदास, गन्ध पवन ज्यों उत्तम बास।
इश्क न खाने देवे स्वांस, ज्यों अग्नि न छोड़े दाना घास।।(बड़ा कयामतनामा ६/४०)

सम्पूर्ण वाणी ही ब्रह्मसृष्टि के लिए प्रबोध का स्वरूप है। बारीक से बारीक सूत कातने दृष्टांत देकर समझाया गया है कि तुम पिया को इस प्रकार याद करो, परन्तु हम अपना सूत कातने की अपेक्षा एक दूसरी के तकले तोड़ने में लगी है। यह जानते हुए भी कि बुजुरगी हमारी सबसे बड़ी दुश्मन है, बुजुरगी लेने के लिए परस्पर

खैंचा-खैंच में लगी है। अपने अवगुण हमें दिखाई नहीं देते, दूसरों के अवगुणों की चर्चा करके रस लेना हमारा मुख्य काम हो गया है। धनी कहते हैं आत्मा की आँखें खोलो और पिया की वाणी जो सब न्यारी है उस के द्वारा अपने प्रियतम से प्रत्यक्ष बातें करो। इस वाणी का एक-एक शब्द पिया के प्रेम में है। कभी प्यार से, कभी गुस्से से कभी लड़कर तो कभी खीझकर, यह भी सच है कि इस वाणी का एक शब्द भी दिल में चुभ जाये तो दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाये। तभी इस ब्रह्मवाणी का महत्व है- 'वासना होसी बेहद की, एक लवे होसी टूक-टूक।' धनी कहते हैं इस वाणी के मीठे वचनों को दिल में उतार लोगे तो परमधाम का दरवाजा खुल जायेगा। इसलिए प्रेम में मगन हो जाओ। यदि हम अन्तर्दृष्टि खोल कर देखें तो पता चलता है कि सम्पूर्ण वाणी का सार ही रहनी है। 'हक बातें तो इत सुनसी पर हम जो करत गुजरान।' बेशक इलम में विराजमान स्वयं श्री राज जी की बातें तो हम सुन रहे हैं परन्तु अपनी- अपनी रहनी पर नजर नहीं डाल रहें। सरकार श्री ने भी वाणी मंथन, चितवनी तथा रेहनी के नारे को सदा बुलन्द किया क्योंकि ये तीनों परस्पर सम्बन्धित हैं। वाणी मंथन से युगल स्वरूप की शोभा दिल में बसती है तो चितवनी से प्रेम का अंकुर उपजता है। जब दिल में प्रेम आ गया तो रहनी को निमन्त्रण नहीं देना पड़ता, वो स्वतः ही जीवन में आ जाती है।

A woman was once asked:
What do you "gain" from praying to Lord regularly..
She replied: "Usually, I don't gain anything but rather I lose things ". And she quoted everything she lost praying to God regularly:
I lost my pride.
I lost my arrogance.
I lost greed.
I lost my urge.
I lost my anger.
I lost the lust.
I lost the pleasure of lying.
I lost the taste of sin.
I lost impatience, despair, and discouragement.
Sometimes we pray, not to gain something, but to lose things that don't allow us to grow spiritually.
Prayer educates, strengthens, and heals.
Prayer is the channel that connects us directly to Lord.
Sometimes we should also pray, not to gain something, but to lose things like pride, arrogance, greed and anger that don't allow us to grow spiritually.

मन क्या है ?

पी. के. सिंह
पंचकुला

श्री कृष्ण जी, मन के संबंध में अर्जुन को समझाते हुए बताते हैं कि, मन प्राणी के शरीर का एक अदृश्य अंग है जो दिखाई नहीं देता परंतु वही शरीर का सबसे शक्तिशाली हिस्सा है। मन शरीर का हिस्सा है उसका आत्मा से कोई संबंध नहीं। यह मन ही इंद्रियों के घोड़ों को इधर-उधर भटकाता है, कभी यौवन के आवेश में यही चंचल मन मनुष्य को इस भ्रम में डाल देता है कि वह सर्वशक्तिमान है वह सब कुछ कर सकता है, उसके आगे हर कोई झुकने के लिए विवश है और यही मन है जो दूसरों पर अत्याचार करने पर उन्हें विवश करता है। वाणी के प्रकाश हिन्दुस्तानी ग्रन्थ की निम्नलिखित चौपाई मन के संबंध में है, जिसमें स्पष्ट किया गया है कि मन क्या है।

बात बड़ी कहे मन मेरी, मैं सकल विध जानों।
मूल बिना करूं सिरदारी, जीव को भी बस आनों।। प्रकाश हिन्दुस्तानी (२०/८६)

यहाँ मन अपने बारे में स्वंय बताते हुए कह रहा है कि मेरा कोई मूल नहीं है लेकिन फिर भी मैं सभी इन्द्रियों पर राज करता हूँ। मैं सारी बातें जानता हूँ और यहाँ तक कि मैं जीव को भी अपने वश में किए रहता हूँ।

या मन को नाहीं कछू मूल, याथे बड़ा कहिए आक का तूल।

मन एक अत्यंत सूक्ष्म पदार्थ है, उससे बड़ा तो आक का तूल (रुई का रेशा) होता है। मन इतना सूक्ष्म है कि उसका चित्र बनाना भी संभव नहीं है शायद इसीलिए कहा गया है कि मन का कोई मूल नहीं है। वह तन में कहाँ विराजमान है, कहाँ बैठ कर सिरदारी कर रहा है इसका कोई पता नहीं है। आध्यात्म बातों में जहाँ कहीं दिल, हृदय आदि शब्दों का प्रयोग होता है तो उससे तात्पर्य 'मन' से ही होता है ।

मन ही मैला मन ही निरमल, मन खारा तीखा मन मीठा।
एही मन सबन को देखे, मन को किनहूं न दीठा।। श्री किरंतन (४७/५)

मन की सृजना होती कैसे है ?

मन वास्तव में विचारों का समूह हैं, जैसे वृक्षों के समूह को वन कहते हैं। एक बच्चा जिसका अभी अभी जन्म हुआ है, उसके पास कोई मन नहीं होता। आपने देखा होगा कि एक छोटा बच्चा यदि सीढ़ियों के पास पहुँच जाता है तो उसके मां बाप उसे वहां से उठा लेते हैं कि कहीं वो गिर न पड़े। क्यों, क्योंकि अभी उस बच्चे के पास ये सूचना नहीं है कि वो सीढ़ियों से गिर सकता है और उसे चोट लग सकती है। क्या आपने देखा है कि गोद में लेटे हुए किसी नन्हे बच्चे ने कहा हो कि उसे मंदिर जाना है या बाजार जाना है ? नहीं न, क्योंकि अभी उसके पास मंदिर या बाजार से संबंधित कोई जानकारी ही नहीं है पर उसके बड़े होने पर ज्यों ज्यों ऐसी जानकारियां उसके मन पर अंकित हो जाती है वो इसकी मांग करने लगता है। बच्चे के जन्म के बाद सबसे पहले उसकी मां उसके पास आती है वो उस पर हाथ फेरती है, प्यार करती है और भूख लगने पर दूध भी पिलाती है। इसलिए बच्चे के पास उसकी माँ की छवि सबसे पहली सूचना के रूप में अंकित होती है और बस वहीं से उसके मन का सृजन प्रारंभ होता है । मन का सृजन माँ की छवि से होता है और फिर धीरे धीरे ज्यों ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है तो यहाँ वहां देखकर, पढ़कर, अनुभव करके या किसी द्वारा बताए जाने पर सूचनाएँ एकत्रित करता है और उसका मन बनता जाता है ।

मन को कैसा बनाएं ?

ये बात तो स्पष्ट है कि जैसी सूचनाएँ व्यक्ति एकत्रित करता है, वैसा ही उसका मन बनता है । एक बच्चा जो जीवन में अच्छी अच्छी जानकारियां एकत्रित कर रहा है का मन दूसरे उस बच्चे से जिसने जीवन में अपने आस पास से गलत गलत जानकारियां एकत्रित की हैं से निश्चित ही भिन्न होगा ।

इस संबंध में सद्गुरु का कहना है कि जब आप दुनियां में आते हैं, आप गढ़े हुए नहीं होते । आप खुद को जैसा चाहे वैसा गढ़ें, नहीं तो दूसरे लोग और समाज आपको गढ़ेगा। अगर आप कई हाथों को खुद को गढ़ने देते हैं, तो आप विकृत हो जायेंगे ।

मन का निर्मल होना आवश्यक है। यदि ईश्वर को पाना है तो अपने जीवन में सरलता अति आवश्यक है । इस बारे में तुलसी दास जी रामचरितमानस में कहते हैं कि

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

श्री राम अपने मित्र सुग्रीव को समझाते हुए कह रहे हैं कि हे सुग्रीव जो मानव निर्मल मन और सरल होगा वही मुझको पाएगा, क्योंकि मुझको छल, छिद्र और कपट कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।

क्या मन पर नियंत्रण संभव है ?

मन एक बेलगाम घोड़े की तरह है, जिस पर नियंत्रण करना बहुत मुश्किल है। कुछ विरले लोग ही आज तक इस पर नियंत्रण कर सके हैं । ऐसे ही कुछ ज्ञानियों ने मन को नियंत्रित करने की कुछ विधाएं भी बताई, जो कालान्तर में लोगों द्वारा अपनाई गई। कुछ संप्रदाय और कुछ व्यक्ति लालच अथवा भय दिखाकर भी इसे काबू में करने का प्रयास करते हैं। ऐसी तकनीकों के प्रयोग से शुरू-शुरू में तो ऐसा प्रतीत भी होता है कि मन काबू में आ रहा है पर कुछ ही समय बाद स्पष्ट हो जाता है कि मन पर नियंत्रण नहीं कर पाए ।

मन का नियंत्रण या प्रशिक्षण

ये बात तो निश्चित है कि मन पर नियंत्रण करना हम जैसे साधारण व्यक्तियों के लिए आसान काम नहीं है, क्योंकि बड़े बड़े विरले व्यक्ति भी इस क्षेत्र में सफल नहीं हो सके हैं । मन तो कहता है कि मुझ पर नियंत्रण करने का प्रयास मत करो, बल्कि मेरी गरिमा को समझो और जो कोई व्यक्ति ऐसा करता है तो मैं उसके हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न कर सकता हूँ ।

कोई जो कदर जाने मेरी, अंग अंदर आनूं वतन ।
अनेक विध सेवा उपजाऊँ, धनी न्यारे न होवे खिन ।। प्रकाश हिन्दुस्तानी (२०/८९)

अब तुम बिध मेरी देखियो, सब बिध करूं रोसन ।
धाम धनी आन देऊं अंग में, तो कहियो सिरदार सबन ।। प्रकाश हिन्दुस्तानी (२०/८८)

जिस चीज को नियंत्रित न किया जा सके, उसे प्रशिक्षित करना उचित होता है । इसी प्रकार मन, जिसे नियंत्रित करना आसान नहीं है, तो क्या उसे प्रशिक्षित करना उचित नहीं होगा ? जी हाँ, मन को नियंत्रित करने की बजाय उसे प्रशिक्षित किया जाए तो शायद कुछ लाभ हो सके। प्रशिक्षण की प्रक्रिया में मन पर अंकित दूषित सूचनाएँ हटाने की कार्यवाई की जाती है और इसके विकार दूर किए जाते हैं।

मन को प्रशिक्षित कैसे किया जाए ?

मन को इस दिशा में प्रशिक्षित करने के लिए सर्वप्रथम तो रजोगुण और तमोगुण के बंधन से मुक्त होना होगा, क्योंकि एक सात्विक तन में स्थित मन ही ज्ञान, ध्यान एवं प्रेम के मार्ग पर चल सकता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति को प्रशिक्षित करने के लिए एक शिक्षक की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मन को प्रशिक्षित करने के लिए भी एक शिक्षक की आवश्यकता होगी। ये शिक्षक हमारे मन पर जमी हुई धूल को हटाने का कार्य करेगा अर्थात मन में जो दूषित सूचनाएँ जमा हो गई हैं उनको दूर करेगा और भविष्य में कोई दूषित सूचना मन पर अंकित न हो इसका भी प्रशिक्षण देगा। ये शिक्षक कोई और नहीं बल्कि तन में विराजमान हमारी आत्मा है। ये होगा कैसे, आइए इसे निम्न उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं।

आपने कभी किसी बहुत बड़ी कंपनी के मालिक की गाड़ी (कार) को कंपनी में खड़े देखा होगा । उसका एक ड्राईवर होता है जो उस कार को चलाता है। जब भी कहीं जाना होता है तो मालिक कार में बैठता है और ड्राईवर को किसी निश्चित स्थान पर ले चलने को कहता है। यदि मालिक कुछ नहीं कहता तो ड्राईवर स्वयं उससे पूछ लेता है कि मालिक कहाँ चलना है। ड्राईवर का कार्य मात्र कार को ठीक ढंग से चला कर उस गंतव्य तक पहुँचाना होता है, जहाँ जाने के लिए मालिक ने उसे बोला होता है। अच्छा, यदि ड्राईवर बिना मालिक के कार को चला कर ले जाए तो क्या होगा? होगा क्या, ड्राईवर कार को शहर में इधर उधर घुमा कर वापिस ले आएगा। लेकिन यदि मालिक कार में सवार है तो, तो संभव है कि उसे ऐसे-ऐसे उच्च अधिकारियों, मंत्रियों, नेताओं या शहर के प्रमुख अध्यापकों, ज्ञानियों, धार्मिक डेरों में जाने का अवसर मिले जहाँ वो कभी जाने की कल्पना भी नहीं सकता था । बस इसी प्रकार अपने मन को ये समझा दें कि ये तन एक बडे मालिक की कार की तरह है, मन या जीव इस तन रुपी कार का ड्राईवर मात्र है और इसमें विराजमान आत्मा इसकी मालिक है । मन जब भी इस तन से कोई कार्य कराए, तो सर्व प्रथम उस मालिक

(आत्मा) से पूछे कि क्या करना चाहिए । ऐसा करने से मन, जो अभी अपने को सारे कार्यों का कर्ता मानता है, का कर्ता भाव धीरे धीरे समाप्त होने लगता है और कुछ समय बाद ऐसे व्यक्ति का व्यवहार बदलने लगता है । ऐसा करने पर हमारी स्थिति कैसी हो जाएगी जैसे

सब मन में ना कछू मन में, खाली मन मनही में ब्रह्म ।
महामत मन को सोई देखे, जिन दृष्टे खुद खसम ।। श्री किरंतन (४७/६)

आज लगभग हम सभी के घरों में मंदिर बने हुए हैं, किसी न किसी देवता की मूर्ति रखी हुई है या स्वरूप साहब को पधराया हुआ है । हम में से कुछ लोगों ने ऐसा नियम बनाया हुआ है कि जब भी वे घर से बाहर जाते हैं तो जाते समय देवता से कहते हैं कि महाराज जी आप थोड़ी देर विराजमान रहो मैं शीघ्र ही वापिस आता हूँ । हम इसमें थोडा संशोधन कर सकते हैं और यह कहने की बजाय कि आप विराजमान रहो, हम कहें कि आओ प्रभु बाजारध्कार्यालय या दुकान जाना है साथ चलो और मेरा मार्गदर्शन करते रहना।

मन को प्रशिक्षित करने की दिशा में जिसने सही राह पकड़ ली तो शीघ्र ही उसका मन कहेगा कि

अब बल बल जाऊं मेरे धनी, मेरे मन में हाम है धनी ।

लेकिन इस कार्य के लिए बहुत ही धैर्य और निरंतर प्रयास की आवश्यकता होगी, इसलिए आवश्यक है कि हम धैर्य बनाए रखें और इस दिशा में लगातार प्रयास जारी रखें । वाणी भी हमें इस बारे में सजग करते हुए बताती है कि

तेरे संगी तोहे अबही मिलेंगे, तू करे क्यों न करार ।
महामत मन को दृढ़ कर, समरथ स्याम भरतार ।। श्री किरंतन (२४/९)

भावपूर्ण श्रद्धांजलि

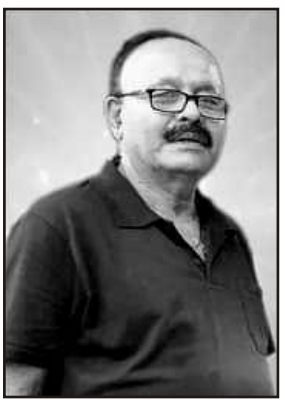

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के ट्रस्ट के सदस्य तथा जागनी अभियान में पूर्वोत्तर भारत के आधार स्तम्भों में से अग्रगण्य सुन्दरसाथ श्री लोकनाथ जी का धामगमन हो गया है।

लोकनाथ जी सुन्दरसाथ के लिए एक प्रेरणास्रोत थे। हम धाम धनी श्री प्राणनाथ जी से प्रार्थना करते हैं कि निज अंगना को स्वचरणों में स्थान दें तथा शोकाकुल परिवार को दुःख सहने की शक्ति दें।

माया गई पोताने घेर

मधुबेन मगनभाई निजानंदी
गोत्री, वडोदरा

रास ग्रंथ के प्रकरण २ की चौपाई में कहा गया है कि - **'माया गई पोताने घेर।'** रास कब होगी? जब माया हमारे सामने से हट जायेगी। हमारे और धनी के बीच में एक पर्दा हैं। पर्दा क्या है, माया का? प्रश्न यह है माया किसको कहते हैं? प्रकृति को माया जानो और इसके स्वामी को परमात्मा जानो। रास ग्रंथ के पहल प्रकरण में कहा है - 'ए माया छे अति बलवंती, उपनी छे मूल धनी थकी। सुंदरसाथ के मन में यह भावना आ जाती है जब श्री राज जी ने माया को उत्पन्न किया है तो परमधाम में भी माया है। पहली बात तो यह है कि परमधाम में न कोई चीज उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है। श्री राज जी से माया उत्पन्न नहीं हुई है, बल्कि उनके आदेश से माया उत्पन्न हुई है।

'योगमाया तो माया कही, पर नेक न भाया इत।' योगमाया को तो माया कह सकते हैं लेकिन परमधाम में नाम मात्र की भी माया नहीं है। अब प्रश्न यह है कि माया का तात्पर्य क्या है? जिस तरह से चंद्रमा का अस्तित्व उसकी चांदनी से है, फूल का अस्तित्व सुगंधि और कोमलता से है, शक्तिमान का अस्तित्व उसकी शक्ति से है, उसी तरह से शक्ति, चांदनी, सुगंधि से सब कुछ माया का स्वरूप कहलायेगा। शक्ति से ही शक्तिमान है और शक्तिमान का अस्तित्व ही शक्ति से है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। परब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति उसकी आनंद शक्ति है। अक्षर ब्रह्म की जो शक्ति है -

'कुदरत को माया कही, गफलत माहे अंधेर'। कुदरत का तात्पर्य क्या है? वह कादर की कुदरत यानी अक्षर ब्रह्म के अंदर की यह शक्ति जो असंख्य ब्रह्मांडों का सृजन करती है। कहलायेगी माया। लेकिन माया के कई भेद हैं। एक है कालमाया जो स्वप्नवत है, और इस कालमाया का जो प्रियतम है, वह भी स्वप्नवत है। अक्षर के मन का जो स्वरूप है, सपने में वही आदिनारायण के रूप में प्रतिबिम्बित होता है अव्याकृत की भी माया है, उसको कहते हैं सनमाया। सबलिक ब्रह्म की जो शक्ति है, उसको कहते हैं चित् माया। केवल ब्रह्म की जो शक्ति है, उसको कहते हैं आनंद-योगमाया। उसी तरह से सत्स्वरूप की जो शक्ति है, उसके अन्दर सत, चित व आनंद तीनों का समावेश है।

इसलिए उसको कहते हैं मूल माया। चारों माया ये हो गई है। अब कहा जा रहा है - 'ए माया छे अति बलवंती, उपनी छे मूल धणी थकी।'

अब प्रश्न यह है कि श्री राज जी ने इस माया को कहां से पैदा कर दिया। परमधाम में तो एक कण भी नहीं बन सकता। अक्षरातीत ने अपने आदेश द्वारा अपने अंग-रूप अक्षर ब्रह्म के मन के स्वरूप अव्याकृत को सपने में डालकर/डलवा कर इस कालमाया को प्रकट किया है। अक्षर के मन को अव्याकृत कहते हैं। अव्याकृत का तात्पर्य है? जो अव्यक्त है, मन, वाणी की जहां गति न हो, उसकी कहते हैं अव्याकृत। अव्याकृत के महाकररण में सुमंगला पुरुष है और उसी सुमंगला पुरुष की फलारूप है रोधिनी शक्ति और उसकी रोधिनी शक्ति का ही रूप है महामाया। मोह का सागर, जिसको कहते हैं कालमाया।

''उपनी छे मूल धणी थकी'' का तात्पर्य यह न समझ लें कि श्री राज जी ने माया पैदा कर दी है। जो प्रेम और आनंद का सागर है वह दुःखदायिनी माया को पैदा नहीं करेगा। गुलाब के फूलों से हमेशा सुगंध ही आयेगी। कभी भी दुर्गन्ध नहीं आएगी। उसी तरह से सत्-चित्-आनंद अक्षरातीत की लीला हमेशा प्रेम और आनंद की होगी। उन्होंने आत्माओं को माया दिखाने के लिए खेल बनाया। उसके आदेश के अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत के स्वप्न से इस कालमाया का विस्तार हुआ। लेकिन हमें उस प्रियतम का दीदार करना है तो माया को अपने सामने से हटाना होगा। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम चौदह लोक की इस दुनिया को हटा सकते हैं? क्योंकि रहना तो हमें दुनिया में है। पांच तत्त्व के पुतले से सारा काम होना है, तो क्या यदि जहर खा लें या घर छोड़ दें तो माया हट जायेगी? नहीं! कमल का फूल पानी में खिलता है लेकिन हमेशा उसे जल से निरासक्त माना जाता है। कमल को पानी में कभी भी आसक्ति के बंधन में नहीं रखा जा सकता है। हमारा पांच तत्त्व का पुतला अन्न-जल से पोषित है, उसे रहने के लिए इन्द्रियों के पेड़ की छाया तो चाहिए। तात्पर्य क्या है -

लगी वाली कछु और न देखे, पिंड ब्रह्मांड वाको है नाहीं।
ओ खेले प्रेम पार पिया सों, दसेन को तन सागर माही।।

जिसकी सुरता उधर लग जाती है। आप देखते हैं कि जब बच्चे टी.वी. के सामने परदे पर अपने पसंद की कोई चीज देखते हैं, चाहे कार्टून देख रहे हों तो उनको दस बार जब तक कहा जायेगा कि भोजन कर लो, तब वो भोजन करेंगे। क्योंकि उसकी लगन उसमें लग गई होती है, उनका ध्यान कहीं और नहीं जा सकता। उसी तरह से आत्मा अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की अनंत शोभा को इस प्रकार देखने लगे, इतना डूब जाय की चौदह लोकों की दुनिया उसके लिए अस्तित्वविहीन हो जाये। उसको कहते लगन लग जाना। एक कवि ने कहा है -

कोई काहू में मगन, कोई काहू में मगन।
हम वाही में मगन, जासो लागी है लगन।।

लगन सबकी होती है। किसी की लगन धन कमाने में, किसी की अध्ययन करने में, किसी की सेवा करने में। आत्मा की लगन लग जाय कि पल-पल हम प्रियतम का दीदार करें, ऐसी अवस्था में अंदर की शक्ति जो माया में लगी होती है वह हटकर प्रियतम में लग जाती है। अर्थात् संसार में रहने पर भी संसार के अस्तित्व का बोध नहीं होता। इसको कहते हैं ''माया गई पोताने घेर।''

''हवे आतम तूं जाग्यानी केर'' कह रहे हैं कि अब आत्मा जाग्रत हो गई है। आत्मा जाग्रत कब होगी? ब्रज की लीला सबने देखी, रास की देखी, जागनी के ब्रह्मांड में भी चार सौ साल हो गये लगभग। जागनी का ब्रह्मांड बना ही इसलिए है कि हम जाग्रत होकर खुद को देखें, अपने प्रियतम को देखें, अपने प्रियतम की लीला को देखें और खिलवत, वहदत, निस्बत, इश्क की मारिफत को देखें, जो परमधाम में नहीं देख सके थे। जागनी का तात्पर्य केवल तारतम लेना नहीं। तारतम तो कोई भी ले सकता है। कल्पना कीजिए एक पेन ड्राइव में तारतम की चौपाईयां रिकार्ड करा दीजिए तो वह तो चौबीस घंटों बजता रहेगा। तो क्या वह जाग्रत हो जायेगा। वह तो जड़ पदार्थ है। यदि हमारे सूने हृदय में केवल तारतम की छः चौपाईयों याद हो गई तो इससे आत्मा की जागृति नहीं कही जायेगी।

जैसा आपन दिल हुकमें, यों इश्के आतम खड़ी होअे।
हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोअे।।

जब आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप बस जाए, आत्मा को यह अहसास होने लगे कि जैसे मैं परमधाम में युगल स्वरूप को देख रही हूँ और परात्म से देख रही हूँ वैसे मेरी आत्मा भी युगल स्वरूप को देख रही है। पच्चीस पक्षों को देख रही है। तब समझिए कि हमारी आत्मा जाग्रत हो गई और जागनी के ब्रह्मांड में यही करना है।

सौभाग्य भरे क्षणों को तिरस्कृत न करें

ईश्वर ने मनुष्य को एक साथ इकट्ठा जीवन न देकर उसे अलग-अलग क्षणों में टुकड़े-टुकड़े करके दिया है। नया क्षण देने से पूर्व वह पुराना वापिस ले लेता है और देखता है कि उसका किस प्रकार उपयोग किया गया। इस कसौटी पर हमारी पात्रता कसने के बाद ही वह हमें अधिक मूल्यवान क्षणों का उपहार प्रदान करता है।

समय ही जीवन है। उसका प्रत्येक क्षण बहुमूल्य है। वे हमारे सामने ऐसे ही खाली हाथ नहीं आते वरन् अपनी पीठ कीमती उपहार लादे होते हैं। यदि उनकी उपेक्षा की जाय तो निराश होकर वापिस लौट जाते है किन्तु यदि उनका स्वागत किया जाय तो उन मूल्यवान संपदाओं को देकर ही जाते है किन्तु यदि ईश्वर ने अपने परम प्रिय राजकुमार के लिए भेजी है।

जीवन का हर प्रभात सच्चे मित्र की तरह नित नये अनुदान लेकर आता है। वह चाहता है उस दिन का श्रृंगार करने में इस अनुदान के किये गये सदुपयोग को देख कर प्रसन्नता व्यक्त करें।

उपेक्षा और तिरस्कार पूर्वक लौटा दिये गये जीवन के क्षण-घटक दुखी होकर वापिस लौटते हैं। आलस्य और प्रमाद में पड़ा हुआ मनुष्य यह देख ही नहीं पाता कि उसके सौभाग्य का सूर्य दरवाजे पर दिन आता है और कपाट बन्द देख कर निराश वापिस लौट जाता है।

विनम्र निवेदन

धाम धनी के लाडले सुन्दरसाथ जी! वर्तमान समय में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा में शिक्षण, साहित्यिक एवं निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। जिन सुन्दरसाथ ने इन कार्यों के लिए अपनी सेवाएं लिखवायी है या स्वतः उनके मन में सेवा करने की इच्छा है, कृपया वे इन खातों में धनराशि भेजने का कष्ट करें। इस बात का ध्यान रखा जाय कि जिस सेवा की धनराशि भेजी जा रही है, मात्र उसी खाते की C.B.S. A/C संख्या में भेजें।

प्रणाम जी

1. खाताधारक का नाम – श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट खाता संख्या – 3290805513	
2. खाताधारक का नाम – श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र, पन्ना खाता संख्या – 3759122888,	
सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, पता : शाखा–सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र. – 247232 MICR Code - 241016005 IFSC Code CBIN0282158	**सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया,** पता : शाखा – पन्ना IFSC Code CBIN0282158

सामान्य खाता संख्या
1335000100111916
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

साहित्य खाता संख्या
1335000100118751
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

भवन निर्माण खाता संख्या
34971188767
भारतीय स्टैट बैंक
(11439) सरसावा, सहारनपुर
उत्तरप्रदेश, पिन- 247232
IFS CODE- SBIN0011439

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ,
सरसावा से प्रकाशित साहित्य की सूची

क्र. सं.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	श्री कुलजम स्वरूप (मूल)	700.00
2.	श्री बीतक साहेब टीका	400.00
3.	श्री रास टीका	150.00
4.	श्री प्रकाश टीका	300.00
5.	श्री कलश टीका	225.00
6.	श्री खटरूती टीका	80.00
7.	श्री किरन्तन टीका (हिन्दी)	300.00
8.	श्री किरन्तन टीका (अंग्रेजी)	350.00
9.	श्री किरन्तन टीका (नेपाली)	300.00
10.	श्री खुलासा टीका	250.00
11.	श्री सनंध टीका	300.00
12.	श्री खिलवत टीका	180.00
13.	श्री परिक्रमा टीका	275.00
14.	श्री सागर टीका	170.00
15.	श्री सिनगार टीका	300.00
16.	श्री सिन्धी टीका	150.00
17.	श्री मारफत सागर टीका	180.00
18.	श्री कियामत नामा टीका	160.00
19.	श्री मुखवाणी संगीत	150.00
20.	विद्वददमनी	200.00
21.	परमधाम पट दर्शन (3 डी)	600.00
22.	धाम सुषमा	60.00
23.	जागो और जगाओ	100.00
24.	दोपहर का सूरज	60.00
25.	प्रेम का चाँद	65.00
26.	निजानन्द योग	60.00
27.	हमारी रहनी	50.00
28.	ब्रह्माण्ड रहस्य	40.00
29.	श्री मद्भागवत यथार्थम्	30.00
30.	ध्यान की पुष्पांजली	70.00
31.	कड़वे सच	50.00
32.	तमस के पार (बड़ी)	40.00
33.	तमस के पार (छोटी)	20.00
34.	तमस के पार (पंजाबी)	40.00
35.	बोध मंजरी (हिन्दी)	15.00
36.	बोध मंजरी (नेपाली)	15.00
37.	बोध मंजरी (उड़िया)	15.00
38.	शाश्वत सत्य की ओर	15.00
39.	सत्य को बाटो (नेपाली)	15.00
40.	संसार से परमधाम की ओर	20.00

क्र. सं.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
41.	श्री प्राणनाथ महिमा	20.00
42.	संस्कार पद्धति	
43.	निजानन्द संस्कार पद्धति	15.00
44.	सेवा पूजा	30.00
45.	मूल स्वरूप की ओर	80.00
46.	चितवनी	5.00
47.	आर्ष ज्योति	120.00
48.	तारतम के निर्झर	70.00
49.	तारतम पीयूषम्	70.00
50.	हमारी शाश्वत सम्पदा	60.00
51.	खाद्य परिशीलन	250.00
52.	विनाश का प्रर्याय मांसाहार	60.00
53.	विराट नक्शा (केलेण्डर रूप में)	50.00
54.	सौवं क्यामतनामा	90.00
55.	अनमोल मोती	5.00
56.	सागर के मोती	10.00
57.	नित्य पाठ	5.00
58.	ये स्वर्णिम पल	10.00
59.	मुख्तार हिन्द	20.00
60.	शब–ए–मेयराज	15.00
61.	अफलातूनी इलम	20.00
62.	बुलन्द मुकदमा	40.00
63.	झूठ ही झूठ	60.00
64.	यथार्थ दीपिका	30.00
65.	प्रश्नमाला	5.00
66.	निजानन्द चित्रकथा	30.00
67.	शेख जी मीर जी का बयान	20.00
68.	फरमान	30.00
69.	स्वास्थ्य के प्रहरी	30.00
70.	सत्यांजलि	50.00
71.	बीतक से शिक्षा	40.00
72.	चितवनी महिमा	80.00
73.	हयातुनबी	40.00
74.	Food for Thought	250.00
75.	Darkness to Brightness	60.00
76.	Mystic Universe	80.00
77.	Chest of Mystic Spiritual Knowledge	25.00
78.	Descent of the Absolute Divine	80.00
79.	Get Introduced to the Nijanand School	120.00
80.	Pearls of Spiritual Wisdom	30.00

बुक पोस्ट

RNI:UPHIN/2016/46009
RNP/SHN/18/2022-24

सेवा में

प्रकाशन कार्यालय :
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
सरसावा, नकुड़ रोड़
जिला सहारनपुर-247232 (उ.प्र.)
मोबाइल : 7088120381